महात्मा भरत

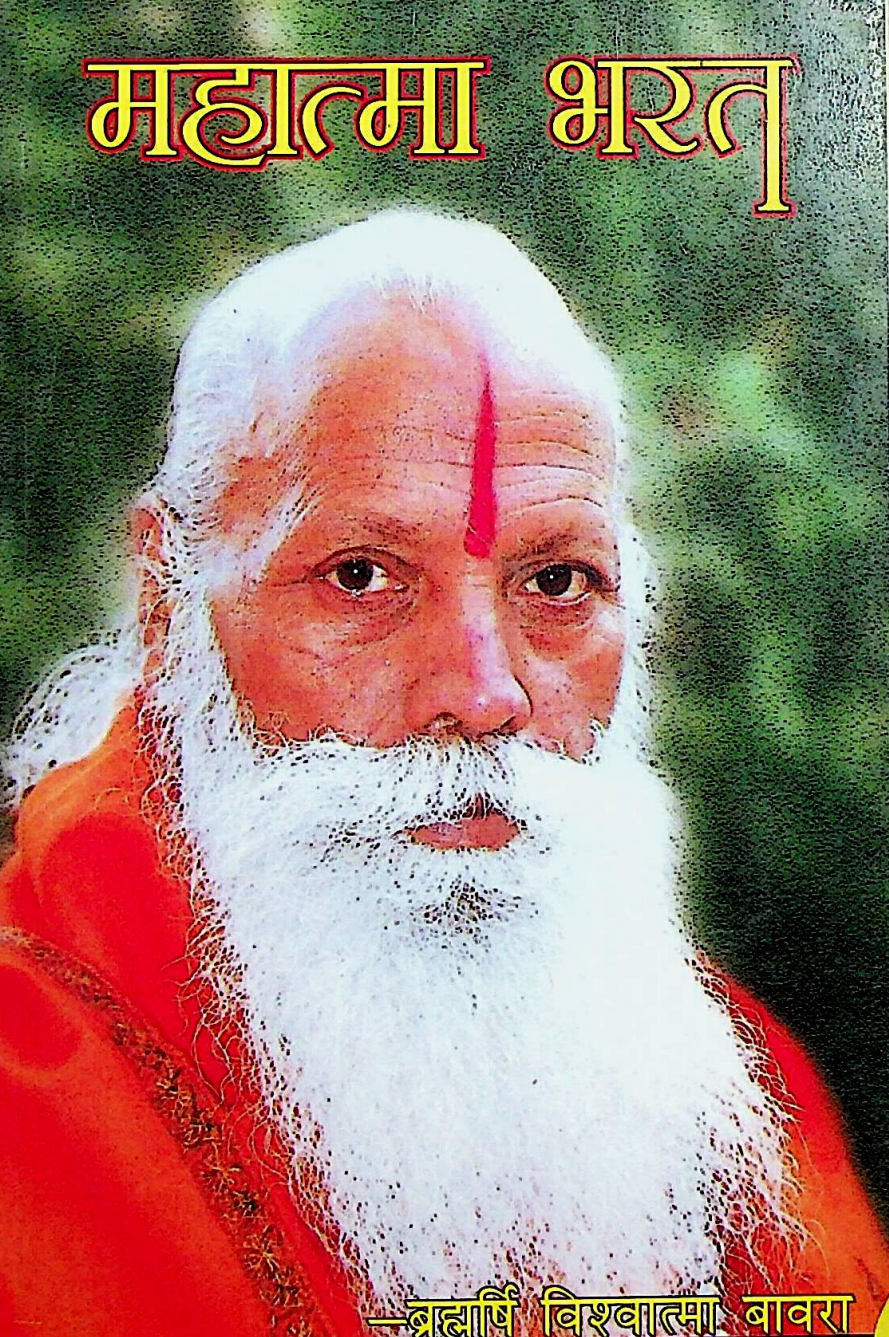

—ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

महाराणा

भरत

[illegible] शिरकमल जानवी

[illegible] प्रकाशन
[illegible] आश्रम, विराट नगर
[illegible] (हरियाणा)-134102

महात्मा भरत

ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम, विराट नगर
पिंजौर (हरियाणा)–134102

प्रकाशक :
दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम,
विराट नगर, पिंजौर (हरियाणा)
फोन : ० १७३३-६६१७०

© लेखकाधीन

संकलन :- स्वामी आदित्य भारती परिव्राजिका
सम्पादन:- स्वामी ब्रह्मऋता परिव्राजिका

प्रथम संस्करण :- मई २००१

प्रतियाँ :- २१००

मूल्य 40

मुद्रक :-दी प्रैस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

दो शब्द

'महात्मा भरत ' नामक लघु ग्रन्थ को आपको समर्पित करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। परम पूज्य गुरुदेव ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा जी महाराज आज के युग की एक महान् विभूति हैं जिन्होंने अपने साधना-जन्य अनुभूत ज्ञान के आधार पर श्रीमद्भगवद्गीता और रामायण के सूक्ष्मतम रहस्यों को जन-सामान्य के लिए सरल भाषा में प्रकाशित करने का प्रयास किया है। पूज्य आचार्यश्री कथाकार नहीं अपितु कथा के माध्यम से मानव समाज को उन गम्भीर समस्याओं से अवगत कराने का प्रयास करते हैं जो सदैव हर युग में प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष आती हैं।

'महात्मा भरत' श्री रामचरितमानस के आदर्श पात्र हैं। जिस राम राज्य की कल्पना आज भी विज्ञजन करते हैं, उसकी स्थापना में भरत जी की मुख्य भूमिका रही है। यदि मैं यह कहूं कि राम-राज्य कोरी कल्पना ही रह जाता यदि भरत मां के द्वारा प्राप्त राज्य को सम्भाल लिए होते। भरत द्वारा राज्य का परित्याग इतिहास की एक अद्भुत घटना है जिसका स्मरण कर आज भी सदय हृदय व्यक्ति अश्रुपूरित हो जाता है और इसी कारण उनकी कीर्ति की गाथा युगों से लोग गाते आ रहे हैं और गाते रहेंगे। भरत के इस महान् त्याग ने

ही उन्हें महात्मा अभिधान से विभूषित किया है।

पूज्य गुरुदेव ने भरत चरित्र के माध्यम से मानव समाज के समक्ष एक महान प्रश्न उपस्थित किया है कि सत्ता वा धर्म में से किसका वरण करना चाहिए ? मानव-मात्र को सावधान करते हुए उन्होंने यह समझाने का प्रयास किया है कि जिन्होंने धर्म की अपेक्षा सत्ता को अधिक महत्ता दी, वे सदैव समाज में निन्दनीय ही होते हैं, इतिहास इसके लिए साक्षी है। विजय सदैव धर्म की ही होती है। क्षणिक सुख की चाह में धर्म का बलिदान अनन्त जन्मों की यातनाओं का कारण बन जाता है।

ये सात दिन के प्रवचन अप्रैल १९९४ में उदयपुर (राजस्थान) में पूज्यश्री ने दिये थे। इनका संकलन हमारी प्रिय आदित्य भारती ने किया और आज यह पुस्तक रूप में आप के हाथ में है। विश्वास है कि यह लघु ग्रन्थ सही जीवन जीने की दिशा में आपका मार्ग प्रशस्त करेगा। पूज्यश्री को नतमस्तक होते हुए उन्हीं के श्री चरणों में यह ग्रन्थ समर्पित है।

सभी की शुभाकांक्षी
ब्रह्मऋता

दिनांक
२५–४–२००१

(१)

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ !

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यही मेरी आन्तरिक शुभ कामना। वर्ष बाद पुन: इस सत्संग भवन में हम आप सभी एकत्रित हुए हैं। पिछली बार मैंने आप लोगों को 'रामो विग्रहवान् धर्म:' भगवान् श्रीराम धर्म के साकार विग्रह हैं, इस विषय पर नौ दिन सत्संग सुनाया था।

राजनीति धर्म में बाधक है और जब धर्म ही राजनीति में पहुँच जाए तो क्या गति होगी ? धर्म के रक्षार्थ ही राजतन्त्र का सृजन हुआ था और धर्म द्वारा निर्धारित जीवन विकास पद्धति का लोग स्वयं पालन करते थे। ऋषि प्रणीत शास्त्रों की भी इतनी आवश्यकता नहीं थी। लोग स्वयं धर्माचरण करके एक दूसरे की रक्षा में निरत रहते थे :-

न वै राज्यं न राजाऽऽसीन्न न दण्डो न दण्डिका:।
धर्मेणैव प्रजा: सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ॥

(शान्तिपर्वणि ५९/१४)

यह महाभारत में शान्ति पर्व का श्लोक है जिसमें भगवान् व्यासदेव बताते हैं कि प्रारम्भ में कोई राजा नहीं था, न कोई राज्य था, न दण्ड था और न कोई दण्ड देने वाला था फिर समाज की स्थिति कैसी रहती थी ? कहा -

धर्मेणैव प्रजा: सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ॥

सारी प्रजा धर्म के द्वारा परस्पर एक दूसरे के अधिकार की रक्षा किया करती

थी। कालान्तर में जब प्रजा में उदण्डता आई, एक ऐसा वर्ग प्रजा में ही निकल पड़ा जो बिना परिश्रम किए, बिना योग्यता के अधिकार का उपभोग करने के लिए तत्पर रहने लगा, ऐसे वर्ग को व्यवस्थित करने के लिए राजतन्त्र की आवश्यकता पड़ी।

भारत में सर्वप्रथम कश्यप के पुत्र मनु को राजा बनाया गया। जब मनु को राजा बनाने का प्रस्ताव रखा गया तो मनु ने अस्वीकार कर दिया कि यह कार्य मेरे से नहीं होगा लेकिन प्रजा ने उनके पिता कश्यप से प्रार्थना की तो उनकी आज्ञा से मनु ने राज धर्म को स्वीकार किया लेकिन कई शर्तों के साथ और मनु प्रथम राजा बने। जो धर्म व्यवस्था, धर्म विधान प्रजा के जीवन विकास में उपयोगी था, उसी को ऋषियों ने मनु को प्रजा में व्यवहरित करने के लिए अधिकार दिया। बाहर के आक्रमण से प्रजा की रक्षा, भीतर के दोशों से प्रजा की रक्षा और वर्णाश्रम धर्म के अनुसार प्रजा के जीवन की व्यवस्था का भार राजा को सौंपा गया। राज धर्म का प्रयोजन यहीं तक था लेकिन धीरे-धीरे राजतन्त्र अपना प्रवेश बहुत दूर तक करने लगा। वर्तमान में तो आपके चूल्हे तक पहुँच गया है। जनता भी यह समझने लगी है कि राजतन्त्र के सिवा ओर कोई दूसरा हमारा हितैषी नहीं यद्यपि यह सर्वथा युक्तिहीन, विवेक विरोधी, बुद्धि विरुद्ध विचार है।

आप लोग याद रखिए कि मनुष्य में तीन प्रकार के भय स्वीकार किए गए हैं। उनमें से सबसे पहला ईश्वर का, दूसरा भय समाज का और तीसरा भय राजदण्ड का है। इन तीनों भयों में दो भय ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष से है। एक भय ऐसा है जिसका सम्बन्ध अप्रत्यक्ष से है। समाज में व्यवस्था अप्रत्यक्ष भय से अधिक है प्रत्यक्ष भय की अपेक्षा। आज समाज में जो अव्यवस्था है, जो अन्याय है, जो अत्याचार है, इन सबके पीछे यदि आप देखें तो आपको ज्ञात होगा कि लोगों के दिल-दिमाग में ईश्वर का वा धर्म का भय समाप्त हो गया है। अब रह गए दो भय- समाज का भय तथा राजसत्ता का भय। समाज का भय इसलिए धीरे-२ उठता जा रहा है कि जब हरेक व्यक्ति अपने बगल में रहने वाले

व्यक्ति को उसी प्रकार की वृत्ति में देख रहा है तो भय किस से हो और क्यों हो? जब एक व्यक्ति अन्याय करता और दूसरा न्याय प्रिय होता तो वहाँ भय होता है। समाज में जब बहुतायत अच्छे लोगों की होती है तो बुरे लोग बुराई करने से डरते हैं। हमें याद है कि हमारे बच्चेपन में गांव में कोई शराब नहीं पीता था। न पीने में कई कारण होते हैं। उसमें एक कारण था समाज का भय। कुछ छोटे वर्ग के लोग जो शराब पीते थे वो भी बड़े चोरी-छुपे कहीं अलग जाकर पीते थे और जब तक नशा नहीं उतरता था कमरे में बैठे रहते थे, जिससे बाहर कोई देख न ले। आजकल तो शराब पीना एक फैशन हो गया है। हरेक गली में, मुहल्ले में शराब की दुकान सरकार ने खोल दी है। शराब पियो, माँस खाओ, दुनिया के सारे अनर्थ करो। भय किससे करना है ? डरना किससे है ? समाज क्या करेगा ? समाज भी उसी में डूबा है। सो जहाँ सभी के मकान शीशे के बने हों वहाँ कौन किससे लड़ेगा ? एक का मकान शीशे का हो दूसरे का पत्थर का तो एक सोचता है कि कहीं ऐसा न हो कि मेरे इस मकान पर कोई पत्थर मार दे और यह फूट जाए। जहाँ पर सभी के शीशे के मकान हों वहाँ कौन किस से डरे। एक कहता है कि तू मेरा तोड़ कर तो देख तुमसे पहले मैं तेरा तोड़ दूँगा, तो समाज का भय जाता रहा।

राज सत्ता का भय देखिए। यह प्रजातन्त्र है, इसमें जितने अधिक सर जिसके साथ होंगे उसका उतना प्रभुत्व होगा। सर के अन्दर बुद्धि जिसे कहते हैं, उसकी कौन परवाह करता है। हाथ कितने हैं उसके साथ उठने वाले, उसकी गिनती है। हाथ में ताकत कितनी है इसकी कौन गिनती करता है। आज तो न सर के अन्दर रहने वाली मेधा का कोई मूल्य रहा और न हाथ में रहने वाली ताकत का ही कोई मूल्य रहा। रह क्या गया है ? केवल हाथ की गिनती और सर की गिनती। अधिक सर वाले अधिक हाथ वाले बहुत से शक्तिशाली हाथ खरीद लेते हैं, बहुत सी शक्तिशाली मेधाएं खरीद लेते हैं इसलिए प्रजातन्त्र में राजतन्त्र का भय कैसे हो सकता है ? आप जानते हैं, देखते हैं कि घोर अत्याचार करने वाले भी पैसे देकर मुक्त हो जाते हैं। जहाँ पर प्रधान मन्त्री से लेकर चपड़ासी

तक बेईमान हो, लूट में लगा हुआ हो, घूंसखोरी से मुक्त न हो, उस देश में राजसत्ता से भयभीत होने वाली प्रजा कैसे रह सकती है? इसलिए राजदण्ड से भयभीत होना अब तो एक कल्पना की बात रह गई है इसलिए समाज का भय चला गया।

अब भारत में जो कुछ थोड़ी सी व्यवस्था आप देख रहे हो वह केवल ईश्वर और धर्म के भय के नाते बची हुई है। जिस गति से ईश्वर और धर्म का भय लोप होने की दिशा में प्रवृत्त हुआ है, यदि ऐसी ही गति रही तो इस देश को एक भीड़ का देश, अव्यवस्थित देश और अपराध का देश बनने से कोई रोक नहीं सकता। हम देखते हैं कि जहाँ ये तीनों भय नहीं हैं वहाँ का जीवन कैसा है। रशिया में ईश्वर नाम की कोई चीज़ नहीं है, धर्म नाम की कोई चीज़ नहीं है, समाज नाम की कोई चीज़ नहीं है, केवल सत्ता ही रह गई है और सत्ता के भय ने उस देश को कहाँ तक पहुँचा दिया है यह आप लोग अच्छी प्रकार से जानते हो। सत्ता का भय किसी समाज को उन्नत नहीं कर सकता, किसी समाज को सदाचारी नहीं बना सकता और न ही किसी को ईमानदार, परिश्रमी और योग्य ही बना सकता है। जहाँ समाज का भय नहीं है, ईश्वर का भय नहीं है, सत्ता का भय नहीं है, ऐसे देशों में अमेरिका भी एक देश है जहाँ मनुष्य रूप में नर पशुओं का निवास है। आप लोगों को तो पता नहीं है, हमें तो वहां रहते २० वर्ष हो गए हैं और देखते हैं कि वहाँ कितने अपराध होते हैं। कुछ ऐसे शहर हैं जहाँ मनुष्य रहते ही नहीं। बड़े-२ नगरों को छोड़कर लोग बाहर जा रहे हैं। १०० मील दूर से लोग शहरों में काम करने आते हैं और काम करके चले जाते हैं क्योंकि शहरों में लोग रह नहीं सकते। उनका जीवन वहाँ संकटपूर्ण है। मैं आप लोगों से बता रहा था कि तीनों प्रकार के भयों में ईश्वर का भय जिसे धर्म का भय कहते हैं, सबसे महत्वपूर्ण है। रामचरित मानस में ऐसा समझाया गया है कि जो व्यक्ति धर्म के भय से भयभीत है, वही महान् बनता है, वही विश्व के लिए, देश के लिए, राष्ट्र के लिए ही नहीं मानव-मात्र के लिए आदर्श होता है। बहुत से लोग राज भय और समाज के भय से पाप नहीं करते लेकिन शास्त्रकारों

ने बताया कि इन सबसे जो महान् भय जिससे मनुष्य कभी बच नहीं सकता, वह भय है धर्म का और ईश्वर का क्योंकि समाज आपको हरेक जगह साथ देखने के लिए नहीं है और राजदण्ड भी आपका बिना प्रमाण के कुछ नहीं कर सकता लेकिन परमात्मा तो सर्वत्र है, धर्म की गति तो सर्वत्र है। परमात्मा ही धर्म है, धर्म ही परमात्मा है। भारतीय दर्शन में धर्म और परमात्मा को अलग-अलग नहीं माना गया। यहाँ तक कि सत्य ही धर्म है और धर्म ही सत्य है, ऐसा उपनिषदों में कहा गया है। जो धर्म के भय से भयभीत है, सत्य के भय से भयभीत है, ईश्वर के भय से भयभीत है, वही व्यक्ति महान् बनता है।

रामचरितमानस में एक ऐसी विभूति है जिसकी महिमा, जिसकी कथा मैं आप लोगों को सात दिन तक सुनाऊँगा। उस विभूति का नाम है महात्मा भरत। रामायण में एक चौपाई है जो मानव-मात्र के लिए कसौटी के रूप में प्रयुक्त की जाती है, वह चौपाई माता कौशल्या के मुख से गोस्वामी जी ने कहलवाई है -

कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ।
पुरुष परिखिअहिं समयं सुभाएँ॥

(रा० २/२८३-६)

उनका कहना है कि सोने की असलीयत कसौटी पर कस कर देखी जाती है और मानिक की असलीयत कोई पारखी देख कर बता सकता है कि मानिक असली है या नकली। जैसे सोने को कस कर देखा जाता है; मानिक को पारखी द्वारा जाना जाता है इसी रूप से मनुष्य की परीक्षा भी दो प्रकार से होती है। एक समय के आने पर मनुष्य की परीक्षा होती है और दूसरा उसके स्वभाव से उसकी परीक्षा होती है। तुलसीदास जी ने लिखा है -

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद काल परिखिअहिं चारी॥

(रा० ३/३-७)

आपत्ति के समय चार की परीक्षा होती है। सबसे पहले धीरज की परीक्षा होती है।

धर्म का मूलाधार धैर्य है। जो धैर्यवान् नहीं है वह धर्मात्मा नहीं बन सकता। अधीर पुरुष के जीवन में जब भी कठिनाई आएगी वह तुरन्त धर्म का त्याग करके सुविधा का रास्ता अपनाएगा लेकिन धैर्यवान के जीवन में जितनी कठिनाई आती है उतना ही उसका धैर्य प्रबल होता है। मनुष्य की परीक्षा, उसके धैर्य की परीक्षा आपत्ति आने पर होती है सम्पत्ति में तो सभी धर्मात्मा बनने को तैयार हो जाते हैं; परमात्मा में विश्वास सभी व्यक्ति करने लगते हैं; भगवान् का नाम सभी लेने लगते हैं। विपत्ति आने पर पता चलता है कि कोई कितना धर्मात्मा है और धर्म के प्रति उसकी कितनी मात्रा में आस्था है ! मित्र की परीक्षा भी विपत्ति आने पर होती है। गिरधर कवि कहते हैं -

सांई या संसार में मतलब का व्यवहार ।
पैसा जा के पास है हैं सब ताको यार ॥
हैं सब ताको यार यार संग ही संग डोलें ।
पैसा रहे न पास यार मुख से नहीं बोलें ॥
कह गिरधर कविराय जगत कर याही लेखा ।
करत बेगर्ज़ी प्रीति यार बिरला कोऊ देखा ॥

बिना गरज़ से प्यार करने वाला मित्र तो कोई एक कहीं मिलता है। रामायण में बताया गया है कि मित्र की पहचान तो विपत्ति आने पर होती है। सम्पत्ति में तो सभी मित्र बनते हैं लेकिन विपत्ति में कोई साथ देता है कि नहीं देता, यह बहुत ही महत्व ही बात है। रामायण में मित्र की महत्ता को व्यक्त करते हुए भगवान् राम ने स्वयं कहा है कि मित्र किसे कहते हैं -

गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा ॥

(रा० ४/७-४)

जो अपने साथी के गुण को प्रकट करे और अवगुण को छिपा दे और -

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा ।

अपने मित्र को बुरे रास्ते से हटा कर के अच्छे रास्ते पर लगा दे। इतना ही नहीं-

बिपत्ति काल कर सतगुन नेहा ।

श्रुति कह सत्य मित्र गुन एहा ॥

(रा० ४/७-६)

सम्पत्ति में अपने मित्र को चाहे पूछे चाहे न पूछे लेकिन जब उस पर विपत्ति आ जाए तो उससे सौ गुणा अधिक प्यार दिखावे। एक जगह भगवान् राम ने कहा -

निज दुख गिरि सम रज करि माना ।

(रा० ४/७-१)

अपने ऊपर पहाड़ जैसी विपत्ति आ जाए तब भी समझे कि यह तो धूल के बराबर है लेकिन मित्र पर धूल के बराबर भी यदि विपत्ति आ जाए तब भी यह समझे कि वह पहाड़ के बराबर है इसलिए उसे दूर करने की कोशिश करे। बड़ा ही सुन्दर उपदेश है मित्र के प्रति। अब यहाँ पर तुलसी दास जी कहते हैं 'धीरज धर्म मित्र अरु नारी'। नारी की परीक्षा भी विपत्ति आने पर ही होती है। ये चार बातें विपत्ति आने पर ही पता चलती हैं कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का क्या स्वरूप है।

महात्मा भरत जिनकी कहानी मैं आप लोगों को सुनाने जा रहा हूँ उन पर अचानक विपत्ति आई। सामान्य नहीं, सामान्य दृष्टि से तो सम्पत्ति आई थी लेकिन धर्म की दृष्टि से विपत्ति आई थी। आजकल की माँ यदि अपने पुत्र के लिए इस प्रकार का अवसर प्राप्त कर ले, पुत्र तो बाग-बाग हो जाए। कितना आनन्दित होगा पुत्र! वाह रे मेरी मैय्या! तूने मेरे लिए बड़ा आनन्द का काम किया। जो एक सामान्य माँ अपने पुत्र के लिए चाहती है भरत की माँ ने वही तो किया था। उसने कोई ऐसा काम तो नहीं किया जो अनहोनी हो। जिस राज्य सत्ता के लिए एक बार नहीं अनेकों बार इतिहास में पुत्र ने पिता का वध किया है; भाई ने भाई का वध किया है, स्त्री ने पति का वध किया है, वही राज्य सत्ता भरत की माँ ने वरदान के माध्यम से अपने पुत्र के लिए मांग लिया था और उस वरदान के बदले में पति की मृत्यु हो गई। मैं कभी-कभी कहता हूँ कि इससे बड़ा आश्चर्य और कुछ नहीं होगा। दैवासुर संग्राम में पति के प्राणों की रक्षा करने के बदले में कैकेई को दशरथ ने दो वरदान दिए थे। उन दोनों वरदानों का प्रयोग

उसने पति के प्राणों के हरण करने में किया। इसलिए विपत्ति आने पर ही पता चलता है कि स्त्री किसे कहते हैं।

हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में सीख दी गई है कि -मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। इसमें सर्वप्रथम माँ का स्थान है। माँ ही देवता है, ऐसा बताया गया है। पृथ्वी से भी अधिक महान् कौन है? महाभारत के इस प्रश्न के उत्तर में युद्धिष्ठिर ने कहा कि माँ। आकाश से भी महान् कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि पिता। आप लोगों से मैं पूछूँ कि यदि भरत अपनी माँ की बात मान लिए होते तो राम कथा आज जैसी है वैसी होती? क्या रामायण का अखण्ड पाठ आप करते ? क्या युगों से राम की गाथा इस प्रकार से गाई जाती? नहीं, सब समाप्त हो जाता। जिस माँ की बात मान कर राम वन को गए, जिस पिता की आज्ञा मान कर राम वन को गए, उसी माता-पिता की आज्ञा को भरत मान लेते तो रामायण का क्या स्वरूप होता ?

धीरज और धर्म, इन दोनों की परीक्षा समय आने पर विपत्ति काल में होती है। ऐसी आपत्ति भरत पर आ गई। माँ ने उसके लिए राज्य का वरदान तब मांगा जबकि वो वहाँ पर नहीं थे। प्रजा तो हमेशा ऐसे ही होती है। अयोध्या की प्रजा में यह बात धीरे-धीरे फैलने लगी कि राम के वनवास में भरत का ही हाथ है। भरत बड़ा चतुर है ! वो माँ को कह करके आप तो ननिहाल चला गया जिससे इस प्रकार की कोई दुर्घटना हो तो वह उसमें बचा रहे और बाद में आकर के मजबूरी में क्या करता, भाई सबने कहा तो राज्य सम्भाल लिया तो अपनी महत्ता भी और राम प्रेम की गरिमा भी बनी रह जाएगी, अपने निर्दोष भी बने रहेंगे और राज्य भी मिल जाएगा। लोगों की उड़ान बड़ी लम्बी होती है।

एक पक्ष अयोध्या में यह भी सोचने लगा कि राम के वन गमन में भरत की भी सम्मत्ति है लेकिन दूसरा पक्ष कहता था कि नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, भरत सही में महात्मा हैं। भरत की सम्मत्ति नहीं हो सकती। उसी वातावरण में भरत को ननिहाल से बुलाया गया। ननिहाल से लौटने पर भरत की दशा बड़ी दुःखद थी, बड़ी विचित्र थी। अयोध्या में प्रवेश करते ही उन्होंने

देखा कि चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ है। अयोध्या की वह प्रसन्नता विलीन हो गई है। जहाँ पर अयोध्या में चारों तरफ मंगल ही मंगल होता था आज वहाँ मंगल की जगह अमंगल ही छाया हुआ है। भरत बड़े आश्चर्य में रहे कि मेरे परम पुरुषार्थी पिता के होते हुए, भईया श्रीराम के होते हुए, लक्ष्मण के होते हुए अयोध्या की यह दुर्गति कैसे हो सकती है ? इसका कारण क्या है ? भरत को कुछ पता नहीं था कि अयोध्या सारी नष्ट-भ्रष्ट हो गई है, राम-लक्ष्मण-सीता वन को चले गए हैं, पिता की मृत्यु हो गई है, अयोध्या में इस समय राजतन्त्र नाम की कोई चीज नहीं है क्योंकि गुरु जी ने जिस धावन को उनके पास भेजा था, उसे केवल इतना ही कहा था कि तुम जाकर भरत से कह दो कि तुम्हारे गुरुदेव ने तुम्हें बुलाया है।

गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई ॥

(रा० २/१५७-३)

इतना कह देना। कारण क्या ? कारण इसमें राजतन्त्र की व्यवस्था है। इस समय राजा का उत्तराधिकारी कोई नहीं है, राजा की मृत्यु हो गई है। शास्त्र का यह विधान है कि राजा की मृत्यु के पश्चात् जब तक राजा का कोई उत्तराधिकारी न बैठाया जाए तब तक उस राजा की मृत्यु की घोषणा भी नहीं हो सकती। जनता को यह नहीं कहा जा सकता कि तुम्हारा राजा मर गया है। अब यह बात तो दूत से गुरुदेव कह नहीं सकते थे। महाराज दशरथ की लाश तेल के मंजूषे में रख दी गई और धावन को भेजा कि भरत को बुला लाओ। जब भरत जी अयोध्या में पहुंचते हैं तो अयोध्या की दशा देखकर विचलित हो जाते हैं और विचार करते हैं कि किसी ऐसे स्थान पर चलो जहाँ पर महाराज दशरथ, भईया राम, लक्ष्मण, सीता आदि सभी मिल जाएं। उनको यह पता था कि पिता जी अधिकांश कैकेई के महल में ही हुआ करते हैं। जहाँ पर पिता जी होंगे वहीं पर राम, सीता, लक्ष्मण और सभी माताएँ भी होंगी। ऐसा निश्चय करके महात्मा भरत सर्वप्रथम अयोध्या में प्रवेश करने के पश्चात् कैकेई के महल में प्रवेश करते हैं। जनता बड़ी विचित्र है। जनता ने जब उन्हें प्रवेश करते देखा तो कहा कि समझे ? अब बात

समझ में आ गई कि नहीं ? देख रहे हो भरत कहाँ जा रहे हैं ? कैकेई के महल में। और क्या समझते थे कि वे कौशल्या के महल में जाएंगे ? जो हमने कहा था कि राम वन गमन में इनका भी मत है, वह ठीक है।

एक दिन मेरे से कुछ लोग कह रहे थे कि महाराज आजकल जगह-जगह धार्मिक प्रवचन हो रहे हैं; राम कथा हो रही है; रामायण का पाठ हो रहा है; जगह-जगह राम नाम की ध्वनि हो रही है फिर भी पाप क्यों इतना बढ़ता जा रहा है ? मैंने उससे कहा कि भले आदमी ! राम का नाम, राम की कथा का गायन, राम का कीर्तन, यह तो बहुत छोटी सी बात है, राम जब स्वयं इस धराधाम पर उपस्थित थे और राम की प्रजा जिसको कि वे प्राण के समान प्यार करते थे, जिसके लिए उन्होंने प्रतिज्ञा की थी -

अनुज राज संपति बैदेही ।
देह गेह परिवार सनेही ॥
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना ।
मृथा न कहउँ मोर यह बाना ॥

(रा० ७/१६-६,७)

अपनी प्रजा के सामने उन्होंने घोषणा की थी कि मेरा देह, मेरा गेह, मेरा परिवार, मेरे सम्बन्धी, मेरे भाई तथा और भी जो कुछ मेरे पास है, ये सब तुम लोगों से अधिक मुझे प्रिय नहीं है। वाल्मीकि रामायण में तो राम कहते हैं कि इन सबका मैं तुम लोगों के लिए त्याग कर सकता हूँ। जो अपनी प्रजा के रंजन में इतने निपुण थे, उन राम को भी प्रजा ने क्षमा नहीं किया और आखिर में उस राम को अपनी प्रजा का केवल मान रखने के लिए या उसके चरित्र को वा आदर्श को रखने के लिए आठ महीने की गर्भवती अपनी धर्मपत्नी को रथ पर बैठा करके जंगल में छुड़वा देना पड़ा। तब प्रजा प्रसन्न हो गई क्या ? तब भी नहीं हुई। मैंने कहा कि जब राम थे तब राम की इतनी दुर्दशा कर दी इस देश की प्रजा ने, अब राम का नाम सुन कर क्या सोचते हो कि प्रजा ठीक हो जाएगी ? यह तो सृष्टि का नियम है, उसी अनुसार चलता है। यहां किसी को क्षमा करने की वृत्ति

नहीं है। यह तो महात्मा भरत ने केवल अपने पिता के पास पहुँचने के लिए कोशिश की कि पिता कैकेई के महल में होतें हैं, मैं कैकेई के महल में चलूं, वहां पिता जी मिल जाएंगे लेकिन जब कैकेई के महल में जाते हैं तो वहाँ पर पिता कहाँ हैं, कैकेई अकेले आरती लेकर सामने आ जाती है। आरती करके जब उसे महल में ले जाती है, तो सबसे पहले भरत उससे यही पूछते हैं -

कहु कहँ तात कहाँ सब माता।

(रा० २/१५९-७)

माँ! पिता जी कहाँ हैं ? पिता जी तो तुम्हारे महल में रहा करते थे, आज दिखाई नहीं दे रहे, कहाँ चले गए ? और सारी माताएँ कहाँ चली गई हैं ? माताएँ भी तो पिता के साथ ही रहती थीं। दिन भर समाज कैकेई के महल में जुड़ा रहता था क्योंकि महाराज दशरथ वहीं रहते थे। भगवान् राम, लक्ष्मण आदि जब पिता से मिलने जाते थे तो वहीं जाते थे इसलिए कैकेई का महल सदा जगमग करता रहता था। अयोध्या का सारा वैभव कैकेई के महल में होता था। आज भरत देख रहे हैं कि जिस कैकेई के महल में उत्सव मचा रहता था सदा, अब वहाँ पिता नहीं माता नहीं-

कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता ॥

(रा० २/१५९-८)

राम कहाँ हैं ? सीता जी कहाँ हैं ? मेरे प्यारे भईया लक्ष्मण कहाँ हैं ? जिनको वह पूछ रहे हैं, उनके विषय में कैकेई का उत्तर सुनिए -

सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन।
भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन ॥

(रा० २/१५९)

तुलसीदास जी लिखते हैं कि पुत्र के स्नेह से सने हुए वचन को सुन कर कैकेई ने कपट के आंसू आँखों में भर लिए और भरत को श्रवणशूल तथा मनशूल दो प्रकार के वचन कहे। यहाँ पर एक बात तो उसके श्रवण को शूल देने वाली है और दूसरी उसके मन को वेदना देने वाली है। श्रवण के पीड़ा पहुँचाने वाली है पिता की

मृत्यु का समाचार और मन को पीड़ा पहुँचाने वाली है राम के वन गमन का समाचार। कानों को वेदना देने वाली बात तो बहुत ही दु:खद और घातक है लेकिन जो दूसरे के मन को, श्रवण को पीड़ा पहुँचाने वाली बात कहता है, वह कौन है ? कहा, वह पापी है। सबसे बड़ा पाप क्या है ? कहा -

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

(रा० ७/४१-१)

दूसरे को पीड़ा पहुँचाने के समान दुनिया में और कोई पाप नहीं है और कैकेई भरत को पीड़ा पहुँचाने में निरत हो रही है। इसलिए तुलसीदास जी ने यहाँ पर उसका नाम नहीं लिया। क्या कहा ?-

भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन ॥

(रा० २/१५९)

माँ नहीं कहा क्योंकि माँ अपने पुत्र को कभी पीड़ा नही पहुँचाती। जो माँ अपने पुत्र को पीड़ा पहुँचाती है, वह माँ नहीं वह पापिनी है। तुलसीदास जी कह रहे हैं, वह माँ नहीं पापिनी बोल रही है। पापिनी क्यों बोल रही है, माँ क्यों नहीं बोल रही ? माँ तो वह है जो अपने पुत्र के लिए उन्नति तथा सुख और शान्ति का मार्ग प्रशस्त करती है लेकिन जो अपने पुत्र को पीड़ा पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त करती हो, वह माँ नहीं पापिनी है। पहली बात वह श्रवण शूल की कहती है -

तात बात मैं सकल सँवारी ।
भै मंथरा सहाय बिचारी ॥

(रा० २/१६० -१)

मेरे पुत्र, अयोध्या में बहुत बड़ा अनर्थ होने जा रहा था लेकिन मैंने सारी बात सम्भाल ली। यदि मंथरा ने मेरी सहायता न की होती तो अकेले मैं यह काम नहीं कर सकती थी। बिचारी मंथरा ने सारी बात को संवारने में बड़ी ही सहायता की लेकिन -

कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ ।

थोड़ा सा काम विधाता ने बीच में ही बिगाड़ दिया। संवारा तो बहुत बड़ा मैंने और बिगाड़ा थोड़ा सा परमात्मा ने, यह मनुष्य की प्रवृत्ति है। मानव प्रवृत्ति का यही स्वरूप है। जो विवेकहीन मानव है उसकी यही स्थिति होती है। आप देखिए कैकेई की समझ! एक नारी के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व क्या है ? उसका पति। पति से श्रेष्ठ नारी के लिए कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। कहीं पति और पुत्र में नारी के लिए कोई वरण करने की बात आवे तो उसे क्या करना चाहिए ? शास्त्र में कहा गया है कि नारी को चाहिए कि वह पुत्र की अपेक्षा पति को वरण करे क्योंकि नारी की गति पति है पुत्र नहीं। राम के वन जाते समय माता कौशल्या ने एक बात कही थी भगवान् राम से -

जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू।
तुम्हरे हृदयँ होई संदेहू॥

(रा० २/५६-६)

हे पुत्र! यदि मैं कहूँ कि तुम मुझे साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदय में संदेह हो जाएगा कि क्या मैं नारी धर्म को भूल गई हूँ ? क्या मैं नारी धर्म को नहीं जानती ? क्या मैंने अपना विवेक खो दिया है ? नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं तुम्हें नहीं कहूंगी कि तुम मुझे अपने साथ ले चलो -

जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ।

(रा० २/५७-४)

मैं बलिहारी जाऊँ, पुत्र! तुम सुख से वन को चले जाओ। हमें इसमें कोई दुःख नहीं है। तुलसीदास जी लिखते हैं कि यह बात कौशल्या ने कब कही ?

बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी।
रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥

(रा० २/५५-६)

जब उसने स्त्री धर्म को समझा तब कहा। स्त्री धर्म में पति ही स्त्री की गति है। इसी आधार पर सारी समाज की रचना हुई। हमारे यहाँ शास्त्रकारों ने परिवार और समाज का दार्शनिक विश्लेषण किया है। उसमें यह बताया गया कि आत्मा

के प्रकाश से बुद्धि प्रकाशित हो रही है। बुद्धि में जो चेतना है यह आत्मा के प्रकाश से है, बुद्धि की अपनी कोई चेतना नहीं है। आत्मा के प्रकाश से जब बुद्धि चेतन हुई तो बुद्धि ने एक पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र का नाम क्या है ? अहं। अहं की आगे और सन्तानें हो गई। अहं का बड़ा लड़का हुआ जिसका नाम है मन और फिर अहं से पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञान इन्द्रियां और पांच विषय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये पन्द्रह हुए और एक मन मिला कर ये सोलह सन्तानें अहं की हुई। ये बुद्धि के क्या लगते हैं? पोत्रे- पोत्रियां। यदि बुद्धि अपने पुत्र, पौत्रों के साथ जुड़ जाती है तो उसका पतन हो जाता है। यही दुःख का मार्ग है, यही नरक का मार्ग है, इसी में वह पड़ी दुःखी होती रहती है। यदि बुद्धि अपने इन परिवारों से मुक्त हो करके, इनकी ममता छोड़ करके अपने प्रकाशक पति की शरण ले, परमात्मा की तरफ मुड़ जाए अर्थात् ब्रह्म विषयात्मिका बुद्धि हो जाए तो फिर तुम्हारा उत्थान है और तुम्हारी बुद्धि के सारे परिवार का कल्याण है, यह नहीं कि उसके परिवार की दुर्गति होगी। कितने आनन्द की बात होती है, जब बुद्धि ब्रह्म विषयात्मिका हो जाती है। तो फिर अहं क्या बन जाता है ? अहं ब्रह्म बन जाता है। उसको क्या कहते हैं ?

अहं ब्रह्मास्मि ।

तुलसीदास जी के शब्दों में -

दीपसिखा सोई परम प्रचण्डा।
सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा ॥

(रा० ७/११८-१)

वह सोऽहम् हो जाता है। वह अहं भी ब्रह्म बन जाता है क्योंकि वह ब्रह्म की सन्तान है, ब्रह्म की अभिव्यक्ति है इसलिए ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। ब्रह्म स्वरूप हो जाने पर इन्द्रियों की सार्थकता सिद्ध हो जाती है, शरीर की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। जीते जी लोग उसकी पूजा करते हैं और मरने के बाद भी उसकी आरती उतारते हैं। यदि पति को विषयं न करके पुत्रों के साथ बुद्धि लग जाए तो सर्वनाश हो जाता है। भगवान् कहते हैं -

बुद्धि नाशात्प्रणश्यति ॥

(गीता २/६३)

यह ऐसी प्रक्रिया है कि जहाँ पत्नी ने पति के विपरीत आचरण शुरू कर दिया, पुत्र के मोह में आबद्ध हुई, वहीं पर उसका सारा जीवन, सारा परिवार नष्ट हो जाएगा। कौशल्या पति परायणा है इसलिए न तो राम के साथ वन जाने को कहा और न राम को वन जाने से रोका। कैकेई पति परायणा नहीं है। कैकेई पुत्र परायणा बन गई। पुत्र परायणा बनने का परिणाम क्या हुआ? न पुत्र हाथ में आया और न पति ही हाथ में आया।

मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि महात्मा भरत के समक्ष कैकेई कहती है -

तात बात मैं सकल सँवारी ।

(रा० २/१६०-१)

लौकिक बुद्धि यहीं से शुरू होती है। बुद्धि के तीन भेद हैं - सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। गीता के अठारहवें अध्याय में भगवान् ने इसका विवेचन किया है और उसमें सात्त्विक, राजसिक और तामसिक बुद्धि में क्या अन्तर है, यह बात समझाई गई है। यहाँ पर आप देखिए कैकेई की बुद्धि-

सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥

(गीता १८/३२)

जो सम्पूर्ण अर्थों में विपरीत ही धारणा बनाती है वो तामसिक बुद्धि है। उस तामसिक बुद्धि वाली कैकेई अपने पुत्र से कहती है कि बनाया तो मैंने बिगाड़ा परमात्मा ने। वाह!

कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ ।

पूछा कि क्या बिगड़ गया ? कहा -

भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ ।

(रा०२/१६०/२)

तुम्हारे पिता जी स्वर्ग लोक को चले गए, यह थोड़ा सा बिगड़ गया। यह तमोगुणी

और मोहासन्न बुद्धि का परिणाम है। कैकेई की इस बात को सुन कर भरत की क्या प्रतिक्रिया होती है, वह कल सुनायेंगे, आज समय बहुत हो गया है। प्रार्थना करें।

हरि ॐ तत्सत्

यदि प्रेम प्रभु से चाहता, अभिमान को तज तात रे।
दे छोड़ सब अरमान नित, हरि नाम जप दिन रात रे॥
संसार के वैभव सभी, तू जान जलती आग रे।
दे त्याग रे सुख स्वप्न का, बीती निशा अब जाग रे॥
नाते सभी तन से किए, मां-बाप पुत्र कलत्र ऐ।
साथी सहोदर अपनपौ, भूला फिरे लखी अत्र ऐ॥
है व्यर्थ ही ममता किया, ना अंत कोऊ संग लाग रे।
तू देख आँखें खोल के, बीती निशा अब जाग रे॥
प्यारे तुम्हारे प्रेम के, जो पात्र हैं संसार में।
वें जायेंगे सब एक दिन, तज के तुम्हें मझधार में॥
साथी न होगा तन तेरा, जिसमें अधिक अनुराग रे।
तू भाग तन पुर छोड़ के, बीती निशा अब जाग रे॥
तू तन नहीं तू मन नहीं, न इन्द्रियां चित्त बुद्धि है।
प्राकृत गुणों के खेल में, भूला हुआ निज सुद्धि है॥
कर्त्ता नहीं तू कर्म का, अभिमान तन का त्याग रे।
पहचान अपने आपको, बीती निशा अब जाग रे॥

(२)

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ।

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। कल मैंने आप लोगों को एक बात समझाई थी-

कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ।
पुरुष परिखिअहिं समयँ सुभाएँ॥

(रा० २/२८३-६)

इसका अभिप्राय सोने की पहचान कसौटी से है, हीरे की पहचान जौहरी से है और मनुष्य की पहचान किस समय होती है ? कहा विपत्ति के समय -

धीरज धरम मित्र अरु नारी।
आपद काल परिखिअहिं चारी॥

(रा० ३/५-७)

सम्पत्ति के समय तो सभी अच्छे होते हैं लेकिन विपत्ति आने पर यह पता चलता है कि वह मनुष्य कैसा है ? कितना धैर्यवान है ? कितना धर्मात्मा है? कितना निष्ठावान् है ? कितना चरित्रवान है ?

मैंने आप लोगों को इन दिनों महात्मा भरत का चरित्र सुनाने का उपक्रम किया है। जो परिस्थिति भरत के सामने थी प्रायः वर्तमान में वही

परिस्थिति सभी व्यक्तियों के सामने किसी न किसी रूप में प्रकारान्तर से दिखाई देती है। धर्म और धन, इन दोनों में यदि वरण करना पड़े तो किसका वरण करना चाहिए ? धन को या धर्म को ? यह मुख्य प्रश्न है वर्तमान के समाज का। सत्ता और धर्म में किसका वरण करना चाहिए, यह समस्या वर्तमान के नेताओं के सामने है। इन दोनों रूपों में धन और धर्म की समस्या प्रजा में तथा सत्ता और धर्म की समस्या राजा के सामने है। आज का राजा नेता है इसलिए नेता के सामने ऐसा समझ लो। आपको तो पता है कि नेताओं ने तो एक जुट होकर के यह निश्चय कर लिया है कि जहाँ हम रहेंगे वहाँ धर्म नहीं रहेगा और जहाँ धर्म रहेगा वहाँ हम नहीं रहेंगे इसलिए नेताओं को तो अब भ्रान्ति रही नहीं कि धर्म और सत्ता में यदि चयन करना पड़े तो नेता किसका वरण करेंगा। यह प्रश्न आज नेताओं के सामने तो समाप्त हो गया है। हमारे नेता बड़े पवित्र हृदय के हैं क्योंकि वहाँ धोखा-धड़ी नहीं है, उन्होंने बिल्कुल स्पष्ट रूप से निश्चय कर लिया है कि यदि धर्म और सत्ता में संघर्ष होगा तो हम सत्ता का साथ देंगे। एक तरफ से आप लोग अब संशय रहित हो गये होंगे कि हमारे देश के कर्णधार नेताओं ने निश्चय कर लिया है कि जहाँ धर्म होगा वहां वे नहीं रहेंगे और उन्हें धर्म की आवश्यकता नहीं है इसलिए उन्होंने राजनीति से धर्म को पूर्णरूप से बहिष्कृत करने का निर्णय कर लिया है।

अब रह गई बात प्रजा की कि धन और धर्म में से किसको वरण करें? आप लोग अच्छी प्रकार से इस विषय में जानते हैं, मुझे बताने की जरूरत नहीं है। आप स्वयं इसका निर्णय अपने लिए कर लें कि आप नित्यप्रति इन दोनों के बीच किसका साथ दे रहें हैं ? यह बात स्पष्ट है लेकिन परिणाम से आप भी अनभिज्ञ हैं और हमारे नेता लोग भी अनभिज्ञ हैं। नीति शास्त्र की घोषणा है कि जो स्वार्थी व्यक्ति है, उसकी दृष्टि अपने शरीर की छाया के बराबर हो जाती है, इससे आगे नहीं जाती लेकिन परमार्थी व्यक्ति बहुत दूर तक देखता है, उसकी दृष्टि बहुत दूर तक जाती है और वो उस सत्य को समझता है। वह जानता है कि इसका परिणाम क्या होने वाला है। वह समाज को अगाह भी करता रहता है

लेकिन सब लोग उसकी बात सुनने और मानने के लिए तैयार नहीं होते क्योंकि वर्तमान की उपलब्धियां मनुष्य को इतना चकाचौंध में डाल देती हैं कि वह भविष्य की कल्पना से ही परे हो जाता है और सोचता है कि वर्तमान का उपभोग कर लो, भविष्य है कि नहीं है कौन जानता है इसलिए मैं आप लोगों से निवेदन कर रहा था कि यदि आप लोगों ने वर्तमान के नेताओं के पदचिन्हों पर चलने का प्रयत्न किया तो उन्हीं के समान आपका भी परिणाम होगा। वर्तमान के नेताओं का क्या परिणाम हो रहा है, यह आप लोगों से छिपा नहीं है। ४७ वर्ष की इस स्वतन्त्रता के पश्चात् जिन नेताओं ने समाज के साथ जो कुछ किया है, उनकी तथा उनके परिवार की क्या गति हो रही है, ज़रा देख लो। जिन्होंने अनेकों को मिटाने का प्रयत्न किया है, वो परिवार सहित आप स्वयं मिट गए। आज उनका नाम लेने वाला कोई नहीं है। यह आपके देखते-देखते की घटना है। आप शास्त्र पर विश्वास करते हैं कि नहीं करते लेकिन आप अपनी दृष्टि, अपनी बुद्धि और अपनी समझ पर तो विश्वास करें, फिर आपको ज्ञात हो जाएगा कि अन्याय का परिणाम कभी न्याय अथवा सुख नहीं होता। अनर्थकारी कृतियों का परिणाम कभी सुख और शान्ति नहीं होता।

मेरी बात याद रखो, वर्तमान के नेता अपने जीवन से, अपने राज्य सत्ता से भले धर्म को बहिष्कृत करदें, यह आज नई बात नहीं है, पहले भी लोग करते आए हैं और उनका भी यही परिणाम होता आया है। आपके इसी देश में कंस पैदा हुआ था, कहीं बाहर से नहीं आया था। कंस तो मंगोलिया से नहीं आया था, बाबर आया था। कंस तो इसी देश में पैदा हुआ था और उसने जीते जी अपने पिता को बंदीखाने में डाल दिया था। उसका परिणाम जो कुछ हुआ वह भी आप से भूला नहीं है। दुर्योधन की गति क्या आप नहीं जानते ? महाभारत के उस दृश्य से आप अपरिचित हैं क्या ? उसका जो परिणाम हुआ, वह भी इतिहास के पन्नों में है। रावण एक उत्तम कुल में पैदा हुआ था, जो महान् विद्वान् भी था, वेद का व्याख्याता भी था, आज भी लोगों की यह मान्यता है कि वेद पर जो राक्षस भाष्य है, वह रावण कृत है। क्या आप नहीं जानते कि उसके जीवन का

अन्त कैसे हुआ ?

मेरे कहने का अभिप्राय कि जिन्होंने सत्ता के प्रमाद में आकर के धर्म को बहिष्कृत किया, उनकी अन्ततोगत्वा गति क्या हुई, इससे आप सब परिचित हैं। इसी प्रकार से जिन्होंने धन के लोभ में आकर के धर्म को बहिष्कृत किया, उनकी क्या गति हुई, यह भी आप से छिपी नहीं है। आप भी यदि चाहें तो इसकी अजमाइश करके देख लें। यह स्थिति आई भरत के सामने जिसका चरित्र मैं आप लोगों को सुनाने जा रहा हूँ। एक तरफ धर्म है दूसरी तरफ सत्ता ही नहीं वैभव भी है। वर्तमान के नेताओं के पास तो सत्ता होती है वैभव नहीं होता क्योंकि यह राजतन्त्र नहीं है प्रजातन्त्र है। सत्ता के नाते वो भले चोरी से घूंस लेकर लूट करके अपना घर भर लें लेकिन वैभव उनके पास नहीं होता। राष्ट्र की किसी सम्पत्ति के वे मालिक नहीं होते। तत्कालीन समाज में राजतन्त्र था जहाँ सत्ता के साथ वैभव भी जुड़ा था। राजा का केवल राज्य ही नहीं होता था बल्कि राज्य की सारी सम्पत्ति उसकी होती थी। भरत के सामने यह स्थिति आई, एक तरफ धर्म है दूसरी तरफ सत्ता और सम्पत्ति, इन दोनों में से चयन करना है। भरत के व्यक्तित्व की इससे बड़ी और परीक्षा क्या हो सकती है ? इससे पूर्व भरत का जो जीवन रहा है, वह एक सामान्य व्यक्ति का जीवन रहा क्योंकि कभी ऐसा अवसर ही नहीं आया। हाँ, इतना अवश्य था कि जब कभी भगवान् राम की कीर्ति सुनते, भगवान् राम के प्रति प्रजा की निष्ठा देखते तो उनका हृदय प्यार से गद्गद हो जाता और उनके उत्साह की कोई सीमा न रहती। राम के प्रति अगाध प्रेम, राम की वृद्धि में अगाध श्रद्धा तो भरत में थी और इसको सभी अवधपुरवासी जानते थे। यहाँ तक कि माता कौशल्या ने कहा कि महाराज दशरथ जब भी कभी अलग बैठते थे तब मेरे से यही कहा करते थे कि तुम्हारा पुत्र राम तो महान् है ही लेकिन मेरे कुल की कीर्ति को जो दुनिया में प्रकाशित करने वाला है, वह मेरा बेटा भरत होगा। ऐसे लगता है जैसे उनको आगे भविष्य का बोध था। यह बात माता कौशल्या ने कही -

जानउँ सदा भरत कुलदीपा।

बार बार मोहि कहेउ महीपा ॥

(रा० २/२८३-५)

कि बारम्बार मुझे राजा ने कहा कि तुम भरत को कुल का दीपक समझना। यह हमारे कुल को प्रकाशित करने वाला प्रकाश स्तम्भ होगा। राजा दशरथ को ऐसा विश्वास था भरत के प्रति। यह सब कुछ था लेकिन मैं बता रहा था कि सम्पत्ति के समय धर्मात्मा तो हरेक आदमी बना रहता है लेकिन यदि विपत्ति के समय में उसकी वही स्थिति बनी रहे, उसका धर्म बना रहे, धैर्य बना रहे तब समझो कि यह आदमी कसा हुआ है।

अब देखिए महात्मा भरत ननिहाल से आए। नगर में प्रवेश करते हैं। कोई सीधे उनसे बात नहीं करता। कोई उनका तिरस्कार भी नहीं करता क्योंकि अभी तक प्रजा बड़े संशय में है कि भरत क्या करेंगे ? प्रजा के दो वर्ग हैं। एक वर्ग कहता है कि राम के वन गमन में भरत का हाथ है, दूसरा कहता है कि नहीं -

सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे ।
रामु भरत कहुँ प्रानपिआरे ॥

(रा० २/४८-८)

अरे ! तुम्हारे ऐसा कहने से तुम्हारे जीवन का संचय किया हुआ पुण्य नष्ट हो जाएगा। भरत जैसे महात्मा के ऊपर लांछन लगाना अशोभनीय है। राम तो भरत को प्राण से भी अधिक प्यारे हैं। सारा समाज असमंजस में पड़ा हुआ है। अब भरत आगे आते हैं माँ कैकेई के यहाँ। कैकेई के यहाँ प्रवेश करते समय भी वे चारों तरफ देखते हैं कि आज यह सारा राज महल सूना क्यों है?-

भरत दुखित परिवारु निहारा ।
मानहुँ तुहिन बनज बनु मारा ॥

(रा० २/१५९-४)

जैसे कमल के वन पर पाला पड़ जाए तो सारा कमल का बगीचा मुरझा जाता है, इसी प्रकार से भरत देखते हैं, सारा परिवार, सारी अयोध्या का समाज मुर्झाया हुआ है लेकिन मुर्झाने में भी -

कैकेई हरषित एहि भाँती ।
मनहुँ मुदित दव लाइ किराती ॥

(रा० २/१५९-५)

कैकेई अति प्रसन्न है, उसकी प्रसन्नता का पारावार नहीं । कैसे प्रसन्न है ? तुलसीदास जी उपमा देते हैं कि जैसे किरातिनी किसी वन में आग लगाकर प्रसन्न हो जाती है ऐसे ही कैकेई भी प्रसन्न है । वन में आग लगा कर किरातिनी क्यों प्रसन्न हो जाती है ? वन में एक-एक पशु कौन मारे, वन में आग लग जाये तो सभी पशु-पक्षी जल जाएंगे और खाने को मिलेंगे तथा आनन्द करेंगे । सुविधाजनक रास्ता है । यही कैकेई की भी दशा है । अब भरत जी ने माँ के सामने खड़े होकर सारी स्थिति का अनुमान लगाते हुए पूछा -

कहु कहँ तात कहाँ सब माता ।
कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता ॥

(रा० २/१५९-८)

पिता जी कहाँ हैं ? मेरी मातायें कहाँ हैं ? श्री सीता और राम कहाँ हैं ? मेरे प्रिय भईया लक्ष्मण कहाँ हैं ? जिसको कैकेई अपना महान् दुश्मन मानती है, उन्हीं के विषय में भरत प्रश्न कर रहे हैं । अब कैकेई की स्थिति देखिए । तुलसीदास जी ने बहुत ही हृदय स्पर्शी यहाँ पर चित्रण किया है -

सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन ।

(रा० २/१५९)

यहां पर नारी स्वभाव का बड़ा सजीव चित्रण किया है कि कपट के आंसू तुरन्त उसकी आंखों में आ गए । आंसू तो प्रेम के होते हैं, दुःख के होते हैं, प्रसन्नता के होते हैं, इस प्रकार के आंसुओं का वर्णन तो शास्त्र में है । राम चरितमानस में आपको तीन प्रकार के आंसुओं का वर्णन मिलेगा लेकिन तुलसीदास जी ने यहाँ पर चौथे प्रकार के आंसुओं का वर्णन किया है जो कि साहित्य और किसी ग्रन्थ में आपको मिलने वाला नहीं है । साहित्य में तीन प्रकार के आंसुओं का वर्णन है- प्रेम के आंसू, पीड़ा के आंसू और प्रसन्नता के आंसू । अत्यन्त प्रसन्नता में भी

आंखों से आंसू बहने लगते हैं, जब आदमी पीड़ित होता है तब भी उसके हृदय से पिघल करके आंसू बहने लगते हैं, जब आदमी में बहुत प्रेम होता है, प्रेम की अधिकता में भी मुनष्य के नेत्रों से अश्रु प्रवाह बहने लगता है। रामचरितमानस में कई जगह ऐसा उदाहरण मिलता है, आप वहाँ पढ़ सकते हैं। यहाँ पर तुलसीदास जी कहते हैं कि न तो उसके आंसू प्रेम के हैं, न पीड़ा के हैं और न प्रसन्नता के हैं। कौन से आंसू हैं? **'कपट नीर भरि नैन'** । कपट के आंसू उसने अपनी आँखों में भर लिए। सबसे बड़ा पाप क्या है ? कपट। वो भी अपने पुत्र के प्रति जिसको उसने जन्म दिया है। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह क्षमा करने वाली देवी नहीं है। आगे क्या लिखा ?

भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन ॥

(रा० २/१५९)

यह पापिनी है, यह अपने पुत्र को भी पीड़ा पहुँचायेगी, पति को तो मृत्यु में धकेल ही दिया, सारी अयोध्या को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और अब पुत्र को भी पीड़ा पहुंचाने में प्रवृत्त हो रही है। कपट के आंसुओं से युक्त नेत्रों वाली कैकेई पापिनी है और पीड़ा पहुंचाने वाले वचन कहने जा रही है। कहती क्या है ?

तात बात मैं सकल सँवारी।
भै मंथरा सहाय बिचारी ॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ।
भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ ॥

(रा० २/१६०-१,२)

कल मैंने आपको बताया था कि मनुष्य की ऐसी वृत्ति होती है, वह कहता है कि जो बना वह मैंने बहुत परिश्रम करके बनाया और जो बिगड़ा उसके लिए कहता है कि मैंने तो बड़ी कोशिश की लेकिन भगवान् को मंजूर नहीं था। ऐसा लगता है कि भगवान् की बहुत पुरानी इससे दुश्मनी चली आ रही है, जो भगवान् ने एन मौके पर बदला ले लिया है। कैकेई भी उन्हीं मनुष्यों में से एक है जो अपने

आन्तरिक भावों को व्यक्त करते हुए यह बात बता रही है -'बिगाड़ा परमात्मा ने थोड़ा सा।' क्या बिगाड़ा ? कहा कि तुम्हारे पिता जो भूपत्ति हैं वो यहाँ के राज्य से तृप्त हो गए थे इसलिए वो सुरपति पुर चले गए। सुरपति के यहाँ तो महाराज दशरथ जाया ही करते थे, यह तो आप लोगों ने पढ़ा होगा। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में भी लिखा है -

आगें होइ नेहि सुरपति लेई ।
अरध सिंघासन आसनु देई ॥

(रा० २/९८-४)

जब सुमंत प्रार्थना करते हैं भगवती सीता से कि तुम लौट चलो, नहीं तो वन में तुम्हें बहुत कष्ट होगा तब भगवती सीता ने कहा कि मैंने अपने पिता के वैभव और विलास को देखा है, मन्त्रीवर! मैं कोई दरिद्र घर की कन्या नहीं हूँ -

पितु बैभव बिलास मैं डीठा ।
नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा ॥

(रा० २/९८-१)

कैसा है मेरे पिता का वैभव ? जो मणि राजाओं के मुकुट में होती है वह मेरे पिता के खड़ाऊँ में लगी हुई है। लड़कियों को अपने पितृकुल पर गर्व होता है, यह कोई नई बात नहीं है। यह तो मेरे पिता का वैभव है और श्वसुर ?

ससुर चक्कवइ कोसलराऊ ।
भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥

(रा० २/९८-३)

श्वसुर मेरे चक्रवर्ती सम्राट दशरथ हैं जिनका प्रभाव चौदह भुवनों में व्याप्त है। वे सामान्य नहीं हैं -

आगें होइ नेहि सुरपति लेई ।
अरध सिंघासन आसनु देई ॥

(रा० २/९८-४)

जब वे स्वर्ग लोक में जाते हैं तो देवराज इन्द्र उन्हें आगे से आगवानी करके अपने

महल में ले जाते हैं, अपने सिंहासन के आधे भाग पर उनको बिठाते हैं।

ससुरु एतादृस अवध निवासू।
प्रिय परिवारु मातु सम सासू॥

(रा० २/९८-५)

मेरे श्वसुर ऐसे वैभवशाली हैं, ऐसे प्रतापी हैं कि अयोध्या अर्थात् अवध में निवास करते हैं। अवध माने जिसका वध करने में कोई सक्षम न हो। जो नित्य है, शाश्वत है, जो चारों तरफ से अवध्य है, सुरक्षित है, वह अवध है। मेरी सासुएँ तो माँ से भी ज्यादा मुझे प्यार करने वाली हैं। यह सब कुछ है, फिर तुम लौट क्यों नहीं चलती ? कहा कि नहीं -

बिनु रघुपति पद पदुम परागा।
मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥

(रा० २/९८-६)

यह सब कुछ होते हुए भी श्रीराम के चरणों की धूलि वहाँ न मिलने से यह सारा सुख का साधन मेरे लिए व्यर्थ है।

मैं आपको बता रहा था कि महाराज दशरथ तो स्वर्ग जाते ही थे। देवराज इन्द्र उनका स्वागत करता था क्योंकि देवराज इन्द्र उनका मित्र था। देवासुर संग्राम में महाराज दशरथ देवराज इन्द्र की सहायता में ही तो गए थे। सम्भासुर से युद्ध हो रहा था। युद्ध में उनको एक घातिनी सांगी लगी थी जिससे वे मूर्छित हो गए थे। उस अवस्था में कैकेई ने उनके प्राणों की रक्षा की थी। उसी प्राण की रक्षा के बदले में उसको वरदान मिला था। कल मैंने बताया था कि पति के प्राण की रक्षा के बदले में प्राप्त किए हुए वरदान का प्रयोग कैकेई ने उसी पति के प्राण को लेने में किया इसलिए कैकेई कहती है-

भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥

यह सब तो ठीक हुआ लेकिन विधाता ने एक बात को बिगाड़ दिया कि तुम्हारे पिता अपने मित्र के घर चले गए। पिता तो मित्र के घर पहले भी जाते थे, तब विधाता बिगाड़ता नहीं था ? इससे सूचित होता है कि अब उनकी मृत्यु हो गई

अर्थात् स्वर्गवास हो गया है।

मेरे एक मित्र थे, मैंने अफसोस करते हुए ऐसा कहा कि तुम्हारे पिता जी का स्वर्गवास हो गया है। वह कहता है कि महाराज यह तो नहीं कह सकता कि उनका स्वर्गवास हुआ या नर्कवास हुआ। उनकी मृत्यु हो गई, इतना मैं जानता हूँ क्योंकि उन्होंने अपने जीवन में कोई ऐसा काम नहीं किया जिससे उनका स्वर्गवास हुआ होगा। सारा जीवन उन्होंने केवल धन कमाने में लगा दिया। उनकी मृत्यु हो गई, बस यही कह सकता हूँ लेकिन महाराज दशरथ के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। उनका तो स्वर्ग में ही वास हुआ, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं क्योंकि जिसके पास राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जैसे पुत्र हों, यह कोई सामान्य पुण्य की बात नहीं है। महर्षि भरद्वाज ने कहा -

कहेहु तात केहि भांति कोउ करिहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु॥

(रा० २/१७३)

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जैसे जिसके पुत्र हों, उस पिता की बड़ाई कौन कर सकता है ? इसलिए वो गये तो स्वर्ग में इसमें कोई सन्देह नहीं लेकिन कैकेई कहती है कि तुम्हारे पिता सुरपति लोक चले गये, यह बिगाड़ हो गया बाकी तो मैंने सारी बात सम्भाल ली थी। अब भरत जी व्याकुल हो गए-

सुनत भरतु भए बिबस बिषादा।

(रा० २/१६०-३)

कहु पितु मरन हेतु महतारी।

(रा० २/१६०-६)

हे मेरी मां, पिता की मृत्यु का कारण क्या है क्योंकि सृष्टि का यह नियम है कि जो आता है मृत्यु सब की होती है। आज दिन तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मरा जिसकी मृत्यु का कोई बहाना न बना हो। बिना बहाने तो मृत्यु भी नहीं आती। पिता की मृत्यु का क्या बहाना बन गया, मेरी माँ! यह भरत के लिए श्रवण शूल वचन था इसलिए भरत जी पूछते हैं-

कहु पितु मरन हेतु महतारी ।
तात तात हा तात पुकारी ।

(रा० २/१६० -६,४)

हे तात! हे तात! ऐसा कहते हुए भरत पृथ्वी पर गिर गए। भरत के हृदय में केवल एक पीड़ा रही। उस पीड़ा को वह स्वयं व्यक्त कर रहे हैं -

चलत न देखन पायउँ तोही ।

आज बहुतों के हृदय में पीड़ा होगी। जिस माता-पिता ने जन्म दिया हो, जिसने पाल कर बड़ा किया हो, जिसकी गोद में एक दो दिन नहीं बहुत काल तक मल-मूत्र का त्याग करते हुए दुत्कार नहीं प्यार मिला हो, ऐसे माता-पिता से वियोग उस समय हो जाए जब सन्तान उनके समक्ष न हो तो कितनी पीड़ा होगी? जो इस सत्य को समझते हैं उनकी बात कर रहा हूँ, जो इस सत्य को नहीं समझने वाले उनकी बात तो छोड़िए।

पश्चिम में मैंने देखा है कि माता-पिता वृद्धाश्रम में पड़े हैं और लड़के ऐश कर रहें हैं। जब वे मर जाते हैं तो मरने के पश्चात् सरकार अखबारों में निकालती है कि इस नाम का व्यक्ति मर गया है, यदि कोई वारिस हो तो इतने दिन बाद उसकी लाश दफनाई जाएगी, आ जाएं। वहाँ यह नहीं है कि व्यक्ति मर जाए तो तुरन्त दफना दें। दस- पंद्रह दिन बाद और कभी-कभी महीनें बाद बारी आती है जलाने के लिए भी, तुरन्त नहीं जला देते। आज मर जाए तो कल ले जाकर जला देंगे, ऐसा नहीं है। सरकार तिथि देती है। उस तिथि तक वह शरीर अस्पताल में ही पड़ा रहता है। वहां पर लड़के-लड़कियां जो उसके वारिस होते हैं, उनको कोई चिन्ता भी नहीं होती क्योंकि वे जानते हैं कि सरकार उनके अधिकार को छीन भी नहीं सकती। कुछ माँ-बाप तो मरते समय अपनी वसीयत चर्च को लगा जाते हैं क्योंकि जिस वृद्धाश्रम में रहते हैं वहाँ चर्च से नर्सें जाती हैं, जिन्हें नन्स कहते हैं। उनकी सेवा करने के लिए नहीं, सेवा के लिए तो नर्स अलग होती हैं। नन्स जाती हैं उनको बाईबिल सुनाने। खड़े होकर पंद्रह मिनट उनको बाईबिल सुना देती हैं। वे रोज जाती है और उन्हें समझाती हैं कि

यह जो सम्पत्ति है, यह तुम्हारे किसी काम आने वाले नहीं है। इसको यदि तुम जाने से पूर्व भगवान् यीशू को समर्पित कर जाओ तो तुम्हारा उद्धार हो जाएगा। मरने के बाद जब आखिरी दिन Judgement day आएगा तो तुम्हारा दिया हुआ दान और हमारा दिया हुआ प्रमाण पत्र, यह सब काम आ जाएगा। अधिकांश माता-पिता तो अपनी सम्पत्ति चर्च के नाम लगा जाते हैं लेकिन बहुत ऐसे माता-पिता होते हैं जिनके बच्चे न तो जीते जी उनकी सम्भाल करते हैं और न मरते समय देखने ही आते हैं, चर्च में भी श्रद्धा न होने के कारण वे अपनी सम्पत्ति न तो चर्च को देते हैं और न बच्चों को इसलिए उनकी सम्पत्ति बाद में सरकार ले लेती है।

मेरा एक शिष्य डाक्टर है, वह इंग्लैंड से मेरे पास आ रहा था। इतने में उसका भाई उसको ढूंढता हुआ आया और उसने बताया कि पिता जी की मृत्यु हो गई है। कहा कब हुई ? महीना हो गया। बहुत अच्छी बात है। उसने कहा कि मैं इसलिए तुम्हारे पास आया हूँ कि सम्पत्ति जो है उसका बटवारा हो जाता तो अच्छा था। वे छः भाई थे, डाक्टर ने कहा कि मैं तो गुरु जी के पास भारत जा रहा हूँ मुझे सम्पत्ति की जरूरत नहीं है, सम्पत्ति तुम लोग आपस में बांट लो। ठीक है, वह भाई लौट गया। वह मेरे पास आ गया तथा छः मास तक अध्ययन और अभ्यास करता रहा। छः महीने बाद जब वह पुनः लौट कर गया तो उसका भाई ढूंढता हुआ उसके पास आया। कहा कि भाई तुम अपना हिस्सा ले लो। उसने कहा कि मैंने तुम्हें पहले भी कहा था कि मुझे नहीं चाहिए, आप पांचों भाई आपस में बांट लो। उसके भाई ने कहा कि नहीं तुम अपना हिस्सा ले लो क्योंकि यदि हम तुम्हारा हिस्सा लेते हैं तो हमें सरकार को डबल टैक्स देना पड़ता है। उसे हिस्सा आखिर लेना पड़ा और वह हिस्सा जानते हो कितना था ? छः लाख पौंड। जिस बाप ने इतना पैसा दिया उस बाप की मृत्यु पर वह गया नहीं, न तो कोई आंसू ही बहाया और जब पता चला कि वह मर गया है तो उसने कहा कि बहुत अच्छा हुआ।

मेरे कहने का अभिप्राय कि वर्तमान में इस प्रकार के संस्कार विदेशों

में तो हैं ही लेकिन भारत में अभी ये संस्कार नहीं हैं। माता-पिता के प्रति श्रद्धा, स्नेह, प्यार अब भी है। सब में तो नहीं रहा लेकिन फिर भी है। भरत एक ऐसे ही पुत्र हैं जिसके हृदय में यह व्यथा है -

चलत न देखन पायउँ तोही ।

एक व्यथा नहीं है दो हैं -एक व्यथा तो यह है कि हे पिता! आखिरी समय में मैं तुम्हें देख नहीं सका। बहुत बड़ी व्यथा होती है पुत्र के लिए जो माता-पिता से आखिरी समय में आशीर्वाद प्राप्त नहीं कर पाता।

आदि गुरु शंकराचार्य जी के पिता की मृत्यु तो पहले ही हो चुकी थी और माँ थी केवल अकेली। आठ वर्ष की आयु में जब वे संन्यासी बनें तो माँ रोने लगी। कहने लगी पुत्र! मेरा और कोई है भी नहीं केवल तू ही है। मैं जब मर जाऊँगी तो मुझे सम्भालने वाला भी कोई नहीं होगा। आचार्य शंकर ने कहा, माँ! जब तू मुझे याद करेगी तो उस समय मैं तेरे सामने होऊँगा। मृत्यु के समय मैं तुम्हारे पास होऊँगा। यह प्रतिज्ञा करके मैं जा रहा हूँ। आचार्य शंकर आए, ओंकारेश्वर में साधना की और गुरु चरणों में रहे। महायोगी बने। जब माँ की मृत्यु का समय आया तो माँ ने याद किया। वे उस समय बहुत दूर थे। अपने शिष्यों के साथ बैठे हुए थे। अचानक उठ कर खड़े हो गए। शिष्यों ने पूछा, भगवन् क्या बात है ? आप बड़े उद्विग्न दिखाई दे रहे हैं। उन्होंने कहा कि मेरी माँ इस समय मुझे याद कर रही है। उसका अन्तिम समय आ गया है। मैंने माँ को वचन दिया है और उसके शरीर छोड़ने से पूर्व मुझे वहां पहुँचना है। शिष्य घबरा गए कि इतनी जल्दी कैसे पहुँच सकते हो, माँ तो केरल में कालरी गांव में है। उन्होंने कहा कि तुम लोग पीछे धीरे-धीरे आओ, हम चल रहे हैं। हम माँ की मृत्यु से पूर्व उसके पास पहुंच जाएंगे। योग बल से वे अपनी गति से चले। योगी की गति कितनी हो जाती है, इसकी कोई इति-मिति नहीं की जा सकती। आचार्य शंकर अपनी माँ की मृत्यु से पहले अपनी माँ के पास पहुंच गए। माँ ने देखा- 'शंकर' कहा - हां, माँ'। आ गया बेटा, अब मैं सुख से शरीर छोड़ूंगी। माँ ने भगवान् का स्मरण करते हुए शरीर छोड़ दिया। उनके परिवार के लोगों ने

कहा कि कलियुग में संन्यास लेना पाप है -

कलौ पंच विवर्जयेत् ।

कलियुग में पांच बातें वर्जित हैं अर्थात् नहीं होनी चाहिए। कौन-कौन सी ? अश्वमेध, गोमेध, नरमेध, नियोग और संन्यास, ये पांचों कलयुग में वर्जित हैं। जब आचार्य शंकर सन्यासी बन गए तो उनकी जाति के ब्राह्मणों ने उनका त्याग कर दिया और उनकी माँ का तिरस्कार किया कि तूने एक ऐसे नालायक पुत्र को जन्म दिया है जो संन्यासी बन गया है। जब माँ की मृत्यु हो गई तो पूरे गांव के लोग वहाँ आए नहीं। माँ की लाश को उठाकर संस्कार करने के लिए नदी तक ले जाना था लेकिन किसी ने हाथ नहीं बंटाया। पहले वो एक-एक करके लकड़ी लेकर गए नदी तक और बाद में माँ की लाश उठाई। कई इतिहासकारों ने तो यहां तक लिखा है कि जब वे अकेले लाश नहीं उठा सके तो वे टुकड़ों में काट कर के लेकर गए और स्वयं दाह संस्कार किया। पूरे गांव को उन्होंने श्राप दे दिया कि जाओ दुष्टो ! तुम लोगों का इस महान् पाप के बदले में सर्वनाश होगा। सारा गांव सही में नष्ट हो गया। आचार्य शंकर जो इतने महान् तत्त्ववादी, अद्वैत वेदान्त के प्रवक्ता थे, उनकी आस्था अन्तिम समय में माँ के दर्शनों की बनी रही कि माँ जाए तो मैं उसको देखूँ इसलिए मैं बता रहा था कि महात्मा भरत के हृदय में प्रथम व्यथा तो यह थी-

चलत न देखन पायउँ तोही ।
तात न रामहि सौंपेहु मोही ॥

(रा० २/१६०-५)

हे पिता ! आपको जाते समय मैं नहीं देख सका और आप अन्तिम समय में मेरा हाथ राम के हाथों में बिना पकड़ाए चले गए।

प्राचीन काल की एक प्रथा थी कि पिता जब शरीर छोड़ता था तो अपने अन्य पुत्रों का हाथ बड़े पुत्र के हाथ में दे देता था क्योंकि राज्य का उत्तराधिकारी बड़ा पुत्र होता था। बड़ा पुत्र उत्तराधिकारी बन जाए लेकिन ऐसा न हो कि अपने छोटे भाईयों पर अत्याचार शुरू कर दे इसलिए पिता अपने अन्य

छोटे पुत्रों के हाथ बड़े पुत्र के हाथ में पकड़ा करके तब अपना शरीर त्याग करता था। भरत को यही व्यथा हो गई कि न तो आपने मेरा हाथ राम के हाथ में दिया और न चलते समय मैं आपको देख सका लेकिन क्या करे -

बहुंरि धीर धरि उठे सँभारी।
कहु पितु मरन हेतु महतारी॥

(रा० २/१६०-६)

बहुत धैर्य धारण करके उठे और माँ से पूछने लगे, हे माँ! पिता की मृत्यु कैसे हुई, यह तू बता। कैकेई सोच रही थी कि इसका रोना-धोना पिता के लिए तब तक है जब तक इसे पता नहीं चलता कि यह सम्राट बन गया है। जहाँ इसे पता चला कि यह सम्राट बन गया है वहाँ यह खुश हो जाएगा, आनन्द मग्न हो जाएगा क्योंकि सत्ता और सम्पत्ति दोनों जिसको मिल जाएं उसके लिए पिता, भाई और दूसरा क्या होता है। इसलिए कैकेई बड़ी प्रसन्नता के साथ सोच रही है कि जहाँ मैंने बताया वहाँ पुत्र का दुःख दूर हुआ। पुत्र के वचन सुनकर कैकेई क्या कहती है, तुलसीदास जी लिखते हैं -

सुनि सुत बचन कहति कैकेई।
मरमु पांछि जनु माहुर देई॥

(रा० २/ १६०-७)

जैसे किसी के घाव को पोंछ करके उस पर जहर लगा दिया जाए तो उसकी पीड़ा और बड़ जाती है इसी प्रकार से पिता के मृत्यु की बात सुन करके भरत के हृदय में जो आघात हुआ है अब उसके ऊपर राम वन गमन रूपी जहर और चढ़ा रही है जो कि भरत के हृदय को चीर डालेगा। अभी तो श्रवण शूल हुआ है आगे हृदय शूल उत्पन्न करने वाली बात कहने जा रही है -

आदिहु तें सब आपनि करनी।
कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥

(रा० २/१६०-८)

बड़ी प्रसन्नता के साथ आदि से लेकर अन्त तक अपनी करनी बता दी कि इस

प्रकार से मैंने वरदान मांगा; इस प्रकार से राम-सीता और लक्ष्मण को वन भेज दिया, तुम्हारे लिए साम्राज्य प्राप्त कर लिया और इस वियोग में पिता की मृत्यु हो गई। तुलसीदास जी कहते हैं -

भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु ।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु ॥

(रा० २/१६०)

पिता की मृत्यु की व्यथा भरत को भूल गई।

एक बात याद रखो जब मनुष्य की इन्द्रियों में पीड़ा होती है तब वह रोता है लेकिन जब हृदय पर आघात पहुंच जाए तब रोता नहीं मौन हो जाता है, स्तम्बित हो जाता है। इस अवस्था को मनोवैज्ञानिकों ने बड़ी दु:खद अवस्था माना है क्योंकि इस में वह कुछ कह नहीं पाता, रो नहीं पाता और अपने हृदय की वेदना को प्रकट नहीं कर पाता और कभी-२ इसमें मृत्यु भी हो जाती है। भरत की वही स्थिति हुई। राम के वन गमन की कहानी सुनते ही भरत को पिता के मृत्यु की व्यथा भूल गई। राम वन गमन में स्वयं को कारण समझने लगे कि यदि मैं न होता तो कैकेई राज्य किसके लिए मांगती? भरत के सामने पूरे समाज का चित्र चला आया कि लोग मुझे हेय दृष्टि से क्यों देखते थे। अब मैं समझ पाया हूँ -

हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु ॥

अब भरत तो मौन हो गए, बोल नहीं पा रहे हैं लेकिन कैकेई मौन नहीं है। वह बड़ी मुखर है। अभी उसे पता नहीं है कि उसका पुत्र किस मिट्टी का बना हुआ है। आगे कैकेई भरत के साथ क्या व्यवहार करती है, यह कल आप लोगों को बताऐंगे।

हरि ॐ तत्सत्

(३)

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ।

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। कल मैंने आप लोगों को एक बात बताई थी कि कभी-कभी मनुष्य के जीवन में बड़ी विकट परिस्थिति आ जाती है और वह विकट परिस्थिति धर्म शास्त्र के द्वारा सुलझाई जाना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाती है। उस स्थिति में बड़े-२ समझदार भी यथार्थ का निर्णय लेने में घबरा जाते हैं। मैंने एक बात कही थी कि सत्ता और सम्पत्ति का प्रलोभन एक ओर हो और धर्म का आदर्श दूसरी ओर तो मनुष्य की दृष्टि कहाँ जाकर टिकेगी, यह आप लोग जानते हो। आज उससे भी गम्भीर एक समस्या और आपके सामने रख रहा हूँ। सत्ता, सम्पत्ति तथा धर्म में निर्णय करने वाला व्यक्ति यदि धर्मनिष्ठ हो तो उसके सामने सत्ता और सम्पत्ति कुछ अर्थ नहीं रखती। भारत में बहुत से ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होंने सत्ता और सम्पत्ति को तृणवत् त्याग दिया है। आपकी यह मेवाड़ की धरती भारतीय इतिहास में अपना मूर्धन्य स्थान रखती है जहाँ के वीरों की घोषणा रही है -

जो तू राखे धर्म को तोहि राखे करतार।

इतिहास में बहुत कम ऐसी गौरवशाली वंश परम्परा आपको मिलेगी जिसमें सत्ता और सम्पत्ति की अपेक्षा धर्म को अधिमान दिया गया हो लेकिन यह सौभाग्य इस मेवाड़ की पवित्र धरती पर हजार वर्षों तक शासन करने वाले राणा वंश को प्राप्त हुआ है। क्या राणा प्रताप मानसिंह की तरह सत्ता और

सम्पत्ति का उपभोग नहीं कर सकते थे ? कर सकते थे। यदि उन्होंने अपने स्वधर्म को थोड़ा सा ही अपने से बगल कर दिया होता तो उससे अधिक हो सकता है उसे सत्ता भी मिल जाती और सम्पत्ति भी। उन्होंने यहाँ के जंगलों में भटकना स्वीकार किया, बच्चों को घास-फूस की रोटियां खिलाना स्वीकार किया लेकिन सत्ता और सम्पत्ति की परवाह नहीं की। स्वधर्म निष्ठा में सब कुछ का त्याग कर दिया।

भारत के इतिहास में ऐसे और भी बहुत से महापुरुष मिलेंगे जिनकी कृति, जिनका चरित्र हमारे लिए आज भी प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। समस्या सत्ता और सम्पत्ति के विपरीत धर्म की नहीं है अपितु जहां पर दो प्रकार के धर्मों में संघर्ष हो जाए, उसमें निर्णय करना बड़ा विकट और मुश्किल होता है। जनसामान्य में प्रतिष्ठित विधा को स्वीकार करने पर धार्मिक दृष्टि से पाप तो नहीं है लेकिन सामाजिक दृष्टि से अनर्थ का बीज बोया जाता है। दूसरी तरफ यदि उस सामान्य धर्म का त्याग किया जाए तो हो सकता है समाज इस दृष्टि से उसका आदर न करे और आत्म- तुष्टि के सिवा दूसरा उससे कोई लाभ न हो। यह बड़ी विकट स्थिति है। यही स्थिति गीता में अर्जुन के सामने है। गीता का सारा तत्त्व ज्ञान इसी द्विविध धर्म के संघर्ष से आविर्भूत हुआ है। एक तरफ गुरुजन, पितृजन और परिजन का जीवन है और दूसरी तरफ स्वधर्म है। इन दोनों में किसको वरण किया जाए? अर्जुन ने निश्चय किया कि मेरे लिए इसमें से गुरुजन, प्रियजन, परिजन का आदर श्रेष्ट है, स्वधर्म मेरे लिए उपादेय नहीं है। स्वधर्म माने क्षात्र धर्म का त्याग करके 'श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके' इस लोक में भिक्षा मांग करके जीवन निर्वाह करूंगा, ऐसा निश्चय करता है और वही मेरे लिए कल्याणकारी होगा लेकिन उसकी अन्तरात्मा ने उसे ग्रहण नहीं किया। वो हार करके अपने आप को प्रभु के समक्ष समर्पित करता है और प्रार्थना करता है-

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

(गीता २/७)

मैं इस समय धर्म के विषय में निर्णय करने में असमर्थ हो गया हूँ क्योंकि यदि एक तरफ अधर्म हो और दूसरी तरफ धर्म हो फिर तो धर्म का पक्ष ले लेना सरल होता है लेकिन जब दोनों तरफ धर्म खड़ा हो तो क्या किया जाए? ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए ? अर्जुन घबरा गया। कहता है -

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।

कृपणता के दोष ने मेरे स्वभाव को दबा दिया है इसलिए धर्म के विषय में मैं मूढ़ बुद्धि हो गया हूँ और आपसे पूछता हूँ, प्रभो !

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे।

(गीता २/७)

धर्म के दो पक्ष हैं - 'प्रेयश्च श्रेयश्च'। धर्म प्रेय प्रदान करता है और श्रेय प्रदान करता है। अर्जुन कहता है कि प्रेय प्रदान करने वाले धर्म को मैं जानता हूँ इसलिए धर्म के विषय में मुझे संशय नहीं है लेकिन अब मुझे जो श्रेयप्रदान करने वाला धर्म है उसके विषय में संशय हो गया है। उस सम्बन्ध में मैं निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ, प्रभो ! आप वो धर्म मुझे बताईए। बड़ा सूक्ष्म विवेचन है यहाँ पर। आगे भगवान् श्री कृष्ण उसे श्रेयस्कर धर्म का उपदेश देते हैं। वह धर्म जो स्वर्ग प्रदान करता है, वह प्रेय धर्म कहा जाता है और जो मोक्ष प्रदान करता है, वह श्रेय धर्म कहा जाता है। अर्जुन को प्रेय धर्म की आवश्यकता नहीं है। उसने कहा कि वह तो मैं जानता हूँ। क्या जानते हो तुम? यही कि इस युद्ध को नमस्कार कर हथियार डालकर के भिक्षा मांग करके रोटी खाऊँ तथा भगवान् का भजन करूँ तो मरने के बाद स्वर्ग मिल जाएगा। यह प्रेयस्कर धर्म मुझे समझ में आया है लेकिन श्रेयस्कर क्या है मेरे लिए, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। भगवान् ने कहा कि यह तुम्हारी भ्रान्ति है। अर्जुन ने कहा कि उसी भ्रान्ति को दूर करने के लिए तो मैं आपकी शरण में आया हूँ। अर्जुन के समक्ष तो भगवान् उपस्थित थे इसलिए उसको श्रेय पथ का मार्ग प्रदर्शित कर दिया लेकिन महात्मा भरत के सामने वही स्थिति आ गई जिसकी कथा मैं आप लोगों को सुना रहा हूँ।

भरत के सामने तो द्विविध धर्म हैं - सत्ता और सम्पत्ति का प्रलोभन तो

एक तरफ है लेकिन धर्म के दो पक्ष उसके सामने हैं। पहला पक्ष है माता-पिता और गुरु की आज्ञा का पालन करना और दूसरा पक्ष है आत्मा की तुष्टि और उसकी शान्ति। जिस धर्म के अनुष्ठान से आत्मा की तुष्टि न होती हो, वह धर्म ग्रहणीय नहीं कहा गया। भक्ति मति मीरा बाई के पत्र के उत्तर में जो गोस्वामी तुलसीदास जी ने पत्र लिखा, उस पत्र को पढ़ करके यह ज्ञात होता है कि गोस्वामी जी इसी विचारधारा के पक्ष में थे कि धर्म वही माननीय है जो आत्म प्रसाद प्रदान करे। आत्म प्रसाद के विपरीत परिणाम प्रदान करने वाला धर्म ग्रहणीय नहीं है त्याज्य है इसलिए उन्होंने अपने उत्तर में लिखा -

जाके प्रिय न राम -बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥

(वि०प० १७४)

जिसको राम बैदेही प्रिय नहीं हैं, वह परम स्नेही ही क्यों न हो उसको करोड़ों शत्रुओं के समान समझ कर त्याग देना चाहिए। वह आदरणीय है लेकिन अनुकरणीय नहीं है। यह नहीं कि जिसका तुम आदर करो उसका तुम अनुकरण भी करो, ऐसा कोई कानून तो नहीं है। तुलसीदास जी कहते हैं -

तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥

जिसका सहज स्नेह तुम्हारे ऊपर बरस रहा हो, वही परम स्नेही होता है। उन्होंने उनकी गणना की है- माता, पिता, गुरु, भाई और पति, ये परम स्नेही हैं। माता से अधिक परम स्नेही कौन हो सकता है जो अपने रक्त से उस बीज को पोषित करती है ? ज़रा कल्पना तो कीजिए आप लोग! जीवन के उस यथार्थ को तो समझिए आप। उस बीज को जो पिता के वीर्य के साथ आता है वह एक बूंद में पांच अरब जीवाणुओं के रूप में उपस्थित होता है। आप जानते हैं कि एक बूंद वीर्य में पांच अरब जीवाणु होते हैं और उन जीवाणुओं में से एक जीवाणु माँ के egg के साथ मिलकर के गर्भ के रूप में परिणित होता है। एक बूंद का पांच अरबवां हिस्सा जीवन का बीज होता है। उस बीज को माँ अपने रक्त से सींच करके अंकुरित करती है, पोषित करती है और इतना ही नहीं एक सुन्दर बालक

के रूप में परिणित करके उसे जन्म देती है। वह माँ जो पति द्वारा प्रदत्त बीज को भूमि प्रदान करती है, खाद्य प्रदान करती है, सींचती है, पोषती है, परिपुष्ट करती है, उस माँ के किये का क्या कोई बदला दे सकता है ? ऐसी माँ से क्या कोई उऋण हो सकता है ? नहीं हो सकता। माँ परम स्नेही तो है लेकिन यह सब कुछ माँ ने किसके लिए किया है और कैसे किया है ? इसका जब तुम पता लगाओगे तो तुम्हें यह बोध होगा कि इसमें माँ का कर्तृत्व हेतु नहीं है, इसमें तो उस परमात्मा का दिव्य विधान हेतु है। यह उसकी व्यवस्था है, माँ की व्यवस्था नहीं है। जिसकी व्यवस्था में यह सब कुछ हुआ यदि उसी के विरोध में माँ उस सन्तान को खड़ा करने के लिए तैयार हो जाए तो क्या करना चाहिए ? उस माँ का आदर करना चाहिए या उस व्यवस्था के सूत्रधार का ? तुलसीदास जी कहते हैं कि नहीं -

तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥

ऐसी माँ को करोड़ों शत्रुओं के समान समझ कर के त्याग कर देना चाहिए। उस वीर्य दाता पिता का भी त्याग कर देना चाहिए जिसने पहले उस जीव को अपने गर्भ में धारण किया है।

वर्तमान का विज्ञान उसका समर्थन करता है, वेद की ऋचाएं समझाती हैं कि पहले इस जीव को पिता (पुरुष) अपने गर्भ में धारण करता है। धारण करके परिपुष्ट करता है और फिर पुष्ट किया हुआ बीज पत्नी के गर्भ में प्रतिष्ठित करता है , उसे प्रत्यारोपण कहते हैं। एक जगह से उठा करके किसी बीज को दूसरी जगह रोपित किया जाए तो वह प्रत्यारोपण होता है। ऐसा वेद का सिद्धान्त है कि पहले जीव पिता के गर्भ में आता है, पिता गर्भित होता है फिर उसके बाद माता गर्भित होती है। छान्दोग्योपनिषद् में जो पंचाहुति विद्या है उसमें इसका वृहद् और वैज्ञानिक विवेचन है। सूर्य मण्डल से चला हुआ जीव किस प्रकार से बालक रूप में पैदा होता है। पिता उस जीवात्मा को मनुष्य रूप में परिणित करने की दिशा में पहला पड़ाव बना और माँ जो उसे मनुष्य रूप में जन्म देती है, वो दोनों परम स्नेही हैं। तुलसीदास जी ने लिखा है कि ये परमात्मा

के विधान के तो एक यन्त्र हैं इसलिए यदि ये परमात्मा के मार्ग में व्यवधान उपस्थित करें तो ये त्याज्य हैं। यदि परमात्मा के सन्निकट ले जाने में ये सहयोगी बनें तो वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं। पूछा गया कि क्या कोई उदाहरण है क्योंकि प्रत्येक आदमी ऐसा साहस तो नहीं कर पाता। शास्त्रकारों का मत है कि-

महाजनो येन गतः स पन्थाः ।

जिस रास्ते पर महापुरुष चले हों उस पर चलने में ही अपना कल्याण है क्योंकि-

तर्को अप्रतिष्ठः श्रुतियो विभिन्ना ।

तर्क अप्रतिष्ठित है। एक तर्क के द्वारा किसी बात को सिद्ध करता है दूसरा बुद्धिमान उससे बड़ा आया तो वह तर्क के द्वारा उसका खण्डन कर देता है, वेद इसमें प्रमाण इसलिए नहीं हो सकता कि श्रुतियां एक नहीं अनेक हैं। सारी श्रुतियां अपने आप में पूर्ण हैं। एक त्रैत कहती है, दूसरी द्वैत कहती है, तीसरी अद्वैत कहती है, किसको माना जाए ? और -

नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम् ।

कोई मुनि ऐसा नहीं है जिसकी वाणी को हम कहें कि यह तो गलत है। हमारे लिए तो सभी मुनि आदर के पात्र हैं। फिर धर्म का निर्णय कैसे लिया जाए? भगवान् व्यासदेव महाभारत में लिखते हैं -

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां ।

धर्म का तत्त्व बुद्धि रूपी गुहा में निहित है। यदि तुम धर्म का यथार्थ बोध प्राप्त करना चाहते हो तो अपने आपको बुद्धि रूपी गुहा अर्थात् ब्रह्मचक्र में ले जाओ। तुम्हारी चेतना जब ब्रह्मचक्र में जाएगी तभी तुम धर्म के द्रष्टा बनोगे। है यह मुश्किल, सब से नहीं होता। चेतना को ब्रह्मचक्र में ले जाना इतना सरल नहीं है, बहुत कठिन कार्य है। यदि बुद्धि रूपी गुहा में प्रतिष्ठित धर्म के यथार्थ बोध को प्राप्त करने की क्षमता न हो तो -

महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

(वनपर्वणि आरण्य ३१३/११७)

जिस रास्ते पर हमारे से पहले महापुरुष गए हैं उसी रास्ते को वरण कर लेना

चाहिए। तुलसीदास जी से पूछा गया कि आप जो निर्देश दे रहे हो क्या आज दिन तक किसी ने परम स्नेहियों का त्याग किया है ? बोले - 'हां, किया है'। किसने किया ? कहा -

तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी ।

प्रहलाद ने अपने पिता का त्याग कर दिया। विभीषण ने अपने भाई रावण का त्याग कर दिया। माँ से अधिक आदरणीय कोई नहीं हो सकता लेकिन महात्मा भरत ने अपनी माँ का त्याग कर दिया। आगे कहा -

बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि,भये मुद-मंगलकारी॥

दैत्यराज बलि ने अपने गुरु शुक्राचार्य का त्याग कर दिया और ब्रज की बालाओं ने अपने पतियों का त्याग कर दिया क्योंकि वे भगवान् के प्रेम में बाधक थे। जो भगवान् के प्रेम में बाधक हो उसका त्याग कर देना चाहिए चाहे वह कितना भी परम हितैषी क्यों न हो। इनके त्याग से इनका अहित नहीं हुआ ? इनका त्याग इनके लिए मंगलकारी हुआ। आज आदर के साथ हम इनका नाम लेते हैं। ऐसा क्यों हुआ ? कहा -

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आंखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥

(वि०प० १७४-३)

अंजन तो आँख में लगाया जाता है आँख की रोशनी को बढ़ाने के लिए, जिस अंजन को लगाने से आँख ही फूट जाए, उस अंजन का क्या लाभ ? धर्म का पालन किया जाता है परमात्मा को पाने के लिए लेकिन जिस धर्म के पालन के परिणाम स्वरूप परमात्मा से ही दूरी हो जाए, उस धर्म से क्या लाभ है ? तुलसीदास जी इस मत के समर्थक हैं और गीता का भी यही मत है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया -

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो ॥

(वि०प० १७४-४)

अपना तो यह निश्चित मत है कि जो भगवत प्रेम में सहयोगी हो वही अपना है और जो भगवत प्रेम में बाधक है, उसको त्याग देना चाहिए। तुलसीदास जी के इस पद ने मीराबाई को वह दिशा प्रदान की जिसके बल पर उसने चितौड़ का त्याग करके वृन्दावन की राह ली।

मैं आपको बता रहा था कि जो तत्त्व परमात्म प्रेम में बाधक हो, उसका त्याग कर देना चाहिए लेकिन यह इतना सुगम नहीं है। तुलसीदास के सामने तो इतने आदर्श थे लेकिन महात्मा भरत के सामने ऐसा आदर्श नहीं था। महात्मा भरत के सामने कोई ऐसा गुरु नहीं था जो उसको इस प्रकार का निर्देश दे। उनके सामने बहुत विकट समस्या थी। एक तरफ माँ जिसके लिए कहा गया-

सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ।

(मनु० २/१४५)

स्मृतिकारों ने घोषणा की है कि पिता से दस गुणा अधिक अधिकार माँ का पुत्र पर होता है। उस माता के निर्देश का उलंघन करना धर्म विरुद्ध है। तुलसीदास जी से पूछा गया -

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा ॥

(रा० १/१८४-१)

आप निशाचर -निशाचर बहुत कहते हो, ये निशाचर कोई दूसरे प्राणी होते हैं क्या ? न-न, यह नहीं सोचना कि निशाचर कोई विचित्र प्राणी होते हैं। कहा कि लोग जब चित्र बनाते हैं तो उसमें सर पर सींग होती है, लम्बें-लम्बें दांत होते हैं, बड़ा सा पेट होता है, क्या ऐसे निशाचर होते हैं ? उन्होंने कहा, नहीं, यह तो चित्रकारिता में उनका आन्तरिक विश्लेषण है। जैसे कार्टूनिस्ट अपने कार्टूनों के माध्यम से व्यक्ति के आन्तरिक भावों को अभिव्यक्त करता है, इसी रूप से चित्रकारों ने निशाचर के लक्षण व्यक्त किए हैं, वैसे ऐसा कोई व्यक्ति होता नहीं। कोई भी मनुष्य आपने दुनिया में नहीं देखा होगा जिसके सिर पर सींग हों। सींग तो उसके क्रोध के चिन्ह हैं। लम्बें-लम्बें दाँत उसके लोभ के निशान हैं। बड़ा सा

पेट उसकी तृष्णा का निशान है। यह कैसे जाना जाए कि यह निशाचर है ? उन्होंने कहा कि लक्षण सुन लो मेरे से -

मानेहिं मातु पिता नहिं देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥

(रा० १/ १८४-२)

जो अपनी माँ को न माने, जो अपने बाप को न माने, जो देवताओं को न माने तथा जो जबरदस्ती सत्पुरुषों से सेवा लेता हो, वह निशाचर है -

जिन्ह के यह आचरन भवानी।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥

(रा० १/ १८४-३)

भवानी ! जिनके ऐसे आचरण हैं उनको तुम जान लो कि निशाचर हैं। यह बड़ी विचित्र कसौटी है। 'मानहिं मातु पिता नहिं देवा' इसमें सबसे पहले तो आपके रामायण के नायक ही आ जायेंगे। जिसको आप आदर्श मानते हो उस भरत जी की गति देखिए। जिस समय माता कैकेई ने कहा कि मैंने सारी बात सम्भाल ली, अयोध्या में तो बड़ा अनर्थ होने जा रहा था। तुम्हारे पिता तो तुम्हारी उपस्थिति में राम को राज्य प्रदान कर रहे थे। इस चाल को मैं समझ गई। मंथरा की सहायता से मैंने कोप भवन का आश्रय लिया। तुम्हारे पिता ने जब राम की शपथ खाई तो मैंने उनसे दो वरदान मांग लिए। क्या वरदान मांगा? तुम्हारे लिए राज्य और राम के लिए १४ वर्ष का वनवास। पिता की आज्ञा मान कर राम तो वन को चले गए, राज्य तुम्हारे लिए सुरक्षित है। राज सिहांसन के तुम उतराधिकारी हो। पिता तो बूढ़े थे, उनको तो मरना ही था। दस दिन बाद में नहीं मरे तो दस दिन पहले मर गए। जब कैकेई ने अपनी सारी कहानी सुना दी तो तुलसीदास जी लिखते हैं -

भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु॥

(रा० २/१६०)

राम वन गमन की बात सुन कर के भरत को पिता की मृत्यु तो भूल गई और वे मौन हो गए। हृदय को शूल लगा। वे बोल नहीं सके। विचार करने लगे कि क्या अनर्थ हो गया! यह सारा अनर्थ माँ ने मेरे लिए किया। कैकेई ने देखा कि यह तो चुप है। क्या सोच रहा है ? शायद पिता की मृत्यु के लिए सोच रहा होगा। कैकेई क्या कहती है, जरा साहस देखिए उस देवी का। पति की लाश सात दिन से तेल के मंजूसे में पड़ी हुई है, उसी राज महल में आप श्रृंगार करके आरती सजा कर पुत्र का स्वागत कर रही है। कहा -

कैकेई हरषित एहि भाँती।
मनहु मुदित दव लाइ किराती ॥

सारी अयोध्या जल रही है लेकिन कैकेई प्रसन्न है -

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति।

व्याकुल देखकर अपने पुत्र को समझा रही है। कैसे समझा रही है ? तुलसीदास जी लिखते हैं -

मनहु जरे पर लोनु लगावति ॥

जैसे किसी का शरीर जल गया हो और उसके ऊपर कोई नमक रख दे ऐसे भरत का हृदय तो राम गमन की बात सुनते ही जल गया। अन्तर संतप्त हो गया और उसके ऊपर अब कैकेई राज्य का प्रलोभन देकर लोन लगा रही है। यह राज्य का प्रलोभन नमक के समान है। नमक अकेले नहीं खाया जाता। यह तो दाल में, सब्जी में डाल कर खाया जाता है। जले आदमी के लिए तो नमक का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता लेकिन यहाँ पर तुलसीदास जी लिखते हैं कि कैकेई कहती है-

तात राउ नहिं सोचै जोगू।
बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू ॥
जीवत सकल जनम फल पाए।
अंत अमरपति सदन सिधाए ॥

(रा० २/१६१-२,३)

तुम पिता के लिए क्यों इतने रो रहे हो ? वे तो बूढ़े हो गए थे। उनको तो जाना ही था। उनके लिए सोचने वाली क्या बात हो गई। तुम्हारे पिता राजा थे। वे सोचने योग्य नहीं हैं। सोचने योग्य तो वह व्यक्ति होता है जो जीवन में कुछ न कर सके। उन्होंने तो अपने जीवन में सुकृत का विस्तार किया और उसके बदले में दुनिया का भोग भोगा। इस दुनिया में उन्हें कीर्ति मिली। उन्होंने सुकृत का और यश का विस्तार किया क्योंकि -

पावन जस कि पुन्य बिनु होई।

(रा० २/११२-७)

बिना पुण्य के पावन कीर्ति नहीं होती। तुम्हारे पिता की तो कीर्ति दुनियां में फैली हुई है। उन्होंने अपने धर्म का विस्तार किया। उन्होंने दुनिया में रहकर पूरा भोग भोगा जो भोगना चाहिए था और इतना ही नहीं -

जीवत सकल जनम फल पाए।

जब वे जीवित अवस्था मे थे तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अच्छी प्रकार प्राप्त किए। एक नहीं चार पुत्र हैं उनके। घर में चारों की बहुएं आ गई हैं। अब उनके लिए कोई करणीय कर्म शेष नहीं रहा। उन्होंने अपना सारा काम कर लिया है और शरीर छोड़ दिया -

अंत अमरपति सदन सिधाए॥

(रा० २/ १६१ -३)

अन्त में स्वर्ग को चले गए इसलिए उनके जीवन पर रोने की क्या आवश्यकता है ? यह कौन समझा रही है - जानते हो ? माँ कह रही है पुत्र को अपने पति के सम्बन्ध में। इतना कहने के पश्चात् क्या कह रही है ?

अस अनुमानि सोच परिहरहू।
सहित समाज राज पुर करहू॥

(रा० २/१६१-४)

ऐसा निश्चय करके तुम शोक का त्याग कर दो और समाज के साथ अयोध्या पुरी पर राज्य करो। तुलसीदास जी कहते हैं कि -

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू ।

राज्य करो अयोध्य पर, यह सुनना था कि भरत अत्यन्त सहम गए। कैसे सहम गए ? तुलसीदास जी लिखते हैं -

पाकें छत जनु लाग अँगारू ॥

(रा० २/१६१-५)

जैसे किसी के घाव पर जलता हुआ अंगारा रख दिया हो। यह स्थिति हो गई भरत की। जब अधिक पीड़ा होती है तो बोला नहीं जाता। यदि उसे पुन: व्यथित कर दिया जाए तो वह हाहाकार जो हृदय में गूंज रहा था, वह फूट निकलता है। पहले तो वे अधीर हो गए लेकिन बाद में देखा कि यह स्थिति रोने की नहीं है। यहाँ रोने वाले के आंसू पोंछने वाला कोई नहीं है। यह तो आप जानते हो कि जब रोते हुए का आंसू पोंछने वाला कोई न हो तो उस आंसू का कोई मूल्य नहीं होता। रोने वाले के आंसू का मूल्य कहाँ है ? जहाँ उसको पोंछने वाला कोई हो, जहाँ वो किसी के हृदय को संत्पत कर सकें। भरत जी की स्थिति यह है कि वे रो नहीं रहे। वे धैर्य धारण करके लम्बी-लम्बी श्वास ले रहे हैं क्योंकि ऐसी अवस्था में heart फेल होने का खतरा होता है।

धीरज धरि भरि लेहिं उसासा ।
पापिनी सबहि भाँति कुल नासा ॥

(रा० २/१६१-६)

धैर्य धारण कर लम्बी श्वास लेकर के अपने शरीर को आक्सीजन से भर रहे हैं। शक्ति आएगी तभी तो बोलेंगे। आखिर में बोल पड़े अरे पापिनी ! माँ नहीं कहा। पहले क्या कहा था ?

बहुरि धीर धरि उठे सँभारी ।
कहु पितु मरन हेतु महतारी ॥

(रा० २/१६०-६)

महतारी बहुत प्यार का शब्द है। महतारी ऐसा शब्द है जिसकी गोद में पहुँच कर बच्चे के सारे संताप मिट जाते हैं और शीतलता प्राप्त होती है। पिता की मृत्यु से

जो भरत को संताप हुआ, उस संताप से मुक्त होने के लिए माँ की गोद में सर रख कर पूछने लगे कि हे महतारी ! मेरे पिता की मृत्यु का कारण बता। जब कारण बता दिया तब ? चौंक पड़ा वह बालक। अलग हो गया वहाँ से, समझ गया कि यह महतारी नहीं है। महतारी वाला काम इसने नहीं किया। महतारी तब तक महतारी है -

पुत्रवती जुबती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुतु होई ॥

(रा० २/७५-१)

वही पुत्रवती जननी है जो अपने पुत्र को भगवान् के चरणों में पहुँचा दे। यह महतारी नहीं, यह तो पापिनी है। 'पा' माने सर्वरक्षक परमात्मा। उससे 'अपां करोति' उससे दूर करने वाली पापिनी है। भरत जी कहते हैं -

पापिनि सबहि भाँति कुल नासा ॥

(रा० २/१६१-६)

तूने केवल मेरा ही नाश नहीं किया, मेरे कुल का भी नाश किया है। मेरे को तो पैदा किया था इसलिए मेरा नाश कर देती तो तेरा कोई अपराध न होता। जिसको तूने जन्म दिया है उसको मृत्यु देने का तेरा अधिकार था लेकिन तूने तो अनर्थ किया है। तूने तो मेरा वंश ही नहीं मेरे वंश की कीर्ति और गौरव का भी नाश कर दिया है। सोचिए, यदि भरत कैकेई की आज्ञा का पालन करते, कैकेई के कहे में आ जाते तो क्या सूर्य कुल का गौरव रह जाता ? नहीं। तभी तो वो कहते हैं-अरे पापिनी ! तूने सब प्रकार से मेरे कुल को नष्ट कर दिया। इतना कह करके हृदय शान्त हो गया ? नहीं, शान्त नहीं हुआ। मनुष्य जब संतप्त होता है, यदि उस समय वह अपने हृदय की बात कह दे तो वह खाली हो जाएगा, उसका दुःख कम हो जाएगा। तुलसीदास जी ने लिखा है -

कहेउ तें कछु दुख घटि होई।

(रा० ५/ १५-५)

कह देने से दुःख कम हो जाता है। यदि कोई सुनने वाला न हो तो किससे कहा

जाए ?

आप लोग सही में सौभाग्यशाली हो क्योंकि भारत में ऐसी व्यवस्था है, और कोई नहीं तो अगल-बगल में तो कोई सुनने वाला मिल जाता है। चाहे आप अपना जितना दु:ख कह दो वो सुनते रहेंगे। सिर मारते रहेंगे, हां-हां करते रहेंगे और आपको सांत्वना भी देते रहेंगे। यह सौभाग्य विदेशियों को प्राप्त नहीं है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वहाँ कोई किसी दूसरे की बात नहीं सुनता। उसके लिए सरकार ने अब एक ऐसी योजना बनाई है कि वह कुछ लोगों को training देती है और इसके लिए पैसे देती है। training किस बात की है, जानते हो ? Training यह है कि आपको इस नम्बर पर call आएगी, आप हैलो करके फोन उठा कर कान को लगा लो और जो भी वह बोल रहा हैं, सुन कर हूँ-२ करते जाओ। आपको न तो बीच में बोलना है और न कोई सलाह ही देनी है। जिससे बोलने वाले को पता चले कि उसकी बात कोई सुन रहा है। कौन बोल रहा है, क्या बोल रहा है, इससे तुम्हारा कोई मतलब नहीं।

मेरे कई शिष्य trained हुए हैं जो यही कार्य करते हैं। वहाँ पर यह social work है। मेरे बड़े प्रिय शिष्य हैं एक दिन उसकी duty social work पर थी उसने कहा कि कि गुरु जी मैं ऐसे सुन रहा था उसको मैंने बीच में कह दिया कि भाई do not worry. इतना सुनना था कि उसने गालियां देना शुरु कर दिया कि तुम्हें केवल मेरी बात सुनना है, मुझे समझाना नहीं। मैं तुम्हारे से ज्यादा जानता हूँ जो तुम मुझे बताना चाहते हो।

मैं आप को बता रहा था कि भारत में यह सौभाग्य है कि आपकी बात को सुनने वाला पड़ौसी मिल जाता है लेकिन पश्चिमी देशों में यह सौभाग्य प्राप्त नहीं है। भरत के हृदय में व्यथा है। उस व्यथा को जब तक वो निकाल न ले तब तक वहाँ शान्ति कहाँ होगी! केवल इतना कहने से बात नहीं बनी। अब आगे और भरत की बात सुनिए क्या कह रहे हैं -

जौ पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोहि॥

(रा० २/१६१-७)

यदि तेरे हृदय में ऐसी ही कुत्सित रुचि थी तो मुझे जन्मते ही क्यों नही मार डाला। सुरुचि और कुरुचि, ये दो प्रकार की रुचियां होती हैं। अपने अधिकार को ग्रहण करने की और अपने कर्त्तव्य के पालन की रुचि अच्छी रुचि है जिसके लिए गीता में कहा है -

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

(गीता ६/१)

जो कार्य कर्म करने की रुचि है उसको सुरुचि कहते हैं, जो दूसरे के अधिकार को हड़पने की रुचि है उसका नाम कुरुचि है। अयोध्या का राज्य राम का है भरत का नहीं। यह महाराज दशरथ ने भी कहा है कि -

लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति॥

(रा० २/३१)

राम को राज्य का लोभ नहीं है, उनका तो भरत पर अत्यन्त प्रेम है। राज्य यदि भरत को दे दिया जाए तो राम को कोई दुःख नहीं बल्कि प्रसन्नता होगी लेकिन राजनीति के अनुसार बड़ा पुत्र ही उत्तराधिकारी होता है इसलिए मैं राम को राज्य दे रहा था। कैकेई से कहा कि आज जब तू कह रही है तो मैं राम को राज्य न देकर भरत को राज्य दे दूंगा। यह वरदान तेरा सत्य है लेकिन –

भरतहि अवसि देहु जुबराजू।
कानन काह राम कर काजू॥

(रा० २/ ५०-२)

तू राम को वन किस लिए भेज रही है ? राम तो अपने शत्रु का भी अहित नहीं करते -

अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा।
बैरिउ राम बड़ाई करहीं।

शत्रु भी राम की प्रशंसा करते हैं। महराज दशरथ प्रार्थना कर रहे हैं कैकेई से कि

तू राम को वन न भेज। यदि राम वन को चले गए तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा लेकिन कैकेई ने बात सुनी नहीं। यही बात अब भरत जी कह रहे हैं-

जौं पै कुरुचि रही असि तोही।

(रा० २/१६१-७)

दूसरे के अधिकार को धोखे से प्राप्त करने की रुचि को उन्होंने कुरुचि कहा है। अधिकार तो राम का है लेकिन तूने तो धोखे से लिया है। पिता को यदि यह पता होता कि तू यह वरदान मांगेगी कि भरत को राज्य और राम को वन देना है तो क्या वे प्रतिज्ञा करते ? इसलिए मंथरा ने कहा था -

भूपति राम सपथ जब करई।
तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई॥

(रा० २/२२-७)

जब राजा राम की सौगंध खा लें तब उनसे मांगना अन्यथा वो अस्वीकार कर देंगे। बात यही हुई। दशरथ ने जब राम की सौगन्ध खा ली तब कैकेई ने दोनों वरदान मांगे। महाराज दशरथ ने प्राण त्यागा राम की शपथ के नाते। पति को धोखे में डाल करके उससे इतना महान् अनर्थकारी वरदान ले लेना राम का अधिकार हड़प्पने के लिए, इससे बड़ी कुरुचि और क्या हो सकती है ? यह कुत्सित रुचि है। यह क्रूर रुचि है। याद रखो, जो दूसरे के अधिकार का हनन करता है वह कभी सुखी नहीं रह सकता। इससे कैकेई को कोई लाभ नहीं हुआ बल्कि वह आजीवन दुःखी रही। पति ने त्याग दिया, पुत्र ने त्याग दिया; आजीवन उसने अयोध्या में किस प्रकार से जीवन बिताया होगा ज़रा सोचो तो सही। तुलसीदास जी लिखते हैं -

कैकेयी जौलों जियति रही।
तौलौं बात मातुसों मुँह भरि भरत न भूलि कही॥

(गीतावली उत्तरकाण्ड ३७/१)

भरत ने बात नहीं की, उसने मां को त्याग दिया। अब भरत जी उससे पूछ रहे हैं कि यदि मेरे लिए राज्य चाहिए था तो मेरे को जन्मते ही मार क्यों नहीं दिया,

यह तेरे लिए कोई अनुचित नहीं था। आज भी तो मुझे तू मार ही रही है। इस अवस्था में पहुँचा कर मारने की अपेक्षा यदि जन्मते ही मार देती तो केवल मैं ही मरता, मेरा कुल तो नाश न होता। आज तो तूने सारे कुल का ही नाश कर दिया है -

पेड़ काटि तैं पालउ सींचा।
मीन जिअन निति बारि उलीचा ॥

(रा० २/१६१-८)

अरे, तेरा कृत्य कैसा है तू जानती है ? जड़ को काट करके तूने पत्ति को हरा-भरा रखने की कोशिश की है और मछली को जीवित रखने के लिए तूने तालाब का जल ही उठा कर बाहर फेंक दिया है। क्या जल के बिना मछली जीवित रह सकती है ? क्या जड़ काट देने से पत्तियाँ हरी रह सकती हैं ? नहीं, तूने ये दोनों काम किए हैं। मैं तो पल्लव हूँ पेड़ तो मेरे पिता थे। पिता की मृत्यु में तू कारण बन गई और तू सोचती है कि ये पत्तियां हरी भरी रहें अर्थात् मैं हरा-भरा रहूं, यह सम्भव हो सकता है कभी ? मैं तो मछली के समान हूँ जो राम प्रेम रूपी सागर में सुखी रहने का आदी हूं, उस राम प्रेम रूपी सागर में से बारि को अयोध्या से बाहर फेंक करके मुझ मीनवत् भरत को तू सुखी रखना चाहती है, तेरे जैसा मूर्ख और दुनिया में कौन होगा? यहाँ पर जल स्थानीय राम और मीन स्थानीय भरत तथा वृक्ष स्थानीय पिता दशरथ और पल्लव स्थानीय भरत हैं। भरत कहते हैं कि यह अनर्थ तूने किया है जिसका परिणाम बड़ा दुःखद होगा। भरत जी लम्बी श्वासें लेते हुए कहते हैं -

हंस बंसु दसरथ जनकु राम लखन से भाइ।

अरे पापिनी ! मैं तुम्हें क्या कहूँ ? लोग कहते हैं कि वे बड़े पुण्यशाली हैं जो उत्तम कुल में जन्म लेते हैं, वे बड़े भाग्यशाली हैं जिनको अच्छे माता-पिता मिलते हैं तथा वे बड़े सौभाग्यशाली हैं जिनको पवित्र भाई मिलते हैं। मैं कितना भाग्यशाली था कि 'हंस बंस' सूर्यवंश में मेरा जन्म हुआ, महाराज दशरथ जैसे मेरे पिता हुए तथा राम-लक्ष्मण जैसे मुझे भाई मिले लेकिन जरूर मेरे पूर्व जन्म का पाप

रहा होगा जिसके बदले मैं -

जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ ॥

(रा० २/१६१)

तेरे जैसी मां मुझे मिली। विधाता के ऊपर किसी का कोई बस नहीं है, न तो मेरा है न किसी अन्य का है। इस व्यथा को व्यक्त करते हुए भरत आगे क्या कहेंगे, यह तो आप कल सुनना, आज समय बहुत हो गया। अब प्रार्थना कीजिए।

हरि ॐ तत्सत्

(४)

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ।

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। कल मैंने बताया था कि भारतीय जीवन विधान धर्म पर प्रतिष्ठित है। उसका मूल स्रोत है वेद -

वेदोऽखिलो धर्म मूलः।

(मनु स्मृति २/६)

वेद प्रतिपादित धर्म की व्यवस्था में यदि कभी संकटपूर्ण स्थिति आ जाए तो मनुष्य को क्या करना चाहिए ? जैसे महात्मा भरत के सामने संकट पूर्ण स्थिति आई। वैदिक नियमों के अनुसार माँ प्रथम देवता है और माँ की आज्ञा का पालन धर्म का प्रमुख रूप है। माता-पिता और गुरु की आज्ञा वैदिक धर्म में बहुत बड़ा स्थान रखती है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम की घोषणा है -

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालें।
चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें॥

(रा० २/३१५-५)

माता-पिता, गुरु और स्वामी यदि गलत रास्ते पर चलने के लिए भी कह दें तब भी निश्चिन्त होकर चल देना चाहिए, कभी उससे पतन नहीं होगा क्योंकि वह जो कुछ कर रहा है अपने गुरुजनों की आज्ञा का पालन करने के लिए कर रहा है। यह कथन राम चरित्र मानस में श्रीराम का है लेकिन भरत के समक्ष स्थिति

विकट है। कैकेई भरत के लिए राज्य की कामना करती है और उसके लिए पति के साथ छल करके नीति के विरुद्ध आचरण करती हुई राम के लिए वनवास का वरदान मांग लेती है। उस धोखे के परिणाम में पति स्वर्गवासी हो जाता है। आप बड़ी प्रसन्नता के साथ पुत्र के आने पर पिता की मृत्यु का समाचार देती है और अपने कर्तृत्व की महत्ता का बखान करती है। जब पुत्र व्याकुल हो जाता है तो उसे समझाती है कि दुःखी क्यों होते हो तुम, पिता तुम्हारे शोचनीय नहीं थे। उनको जो करना था कर चुके थे। उनको तो जाना ही था। यदि चले गए तो चिन्ता की बात नहीं है-

यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू।
सिर धरि राज रजायसु करहू॥

(रा० २/ १७४-२)

तुम चिंता का त्याग करके अपने समाज के साथ अयोध्या का शासन संभालो। भरत यदि माँ की बात मान लें तो धर्म की दृष्टि से एक ऐसा गलत उदाहरण प्रस्तुत हो जाएगा जो मानव-मात्र के लिए पतन का हेतु होगा। जिस देश का राजा, जिस देश का नेता धर्म च्युत हो, पतित हो, कपटी हो, धोखेबाज हो, छली हो, अधर्मी हो, उस देश की प्रजा में धर्म और सत्य कैसे प्रतिष्ठित रह सकता है? यह भरत को अच्छी प्रकार से ज्ञात है इसलिए भरत के सामने अब धर्म के दो स्वरूप एक साथ आये, एक तो माँ की आज्ञा का पालन रूप धर्म और दूसरा समाज के प्रति आदर्श की प्रतिष्ठा स्वरूप धर्म। शासक वर्ग यदि पथभ्रष्ट हो जाए तो शासित वर्ग के लिए वह कौन सा आदर्श प्रस्तुत करेगा, इस सत्य को भरत समझते हैं। भरत अपने दोनों कर्त्तव्यों के प्रति पूर्ण सजग हैं लेकिन दोनों का साथ-साथ पालन नहीं हो सकता, अनुकरण तो केवल एक का होगा। दोनों में श्रेष्ठ क्या है - माँ की आज्ञा रूप धर्म का पालन वा समाज में आदर्श की प्रतिष्ठा रूप धर्म का पालन ? एक धर्म गीता की भाषा में लोकसंग्रह है और दूसरा धर्म गीता की भाषा में कुल धर्म है, व्यक्ति धर्म है। दोनों में से किसका वरण करना चाहिए, भरत जी को इसका निर्णय लेने में विलम्ब नहीं हुआ।

उन्होंने तुरन्त निर्णय ले लिया कि उनके लिए माँ की आज्ञा का पालन करने की अपेक्षा प्रजा के प्रति आदर्श की प्रतिष्ठा अधिक महत्वपूर्ण है ।

नीतिशास्त्र का कथन है कि व्यक्ति परिवार की अपेक्षा समाज के प्रति अधिक जिम्मेदार है इसलिए आवश्यकता पड़े तो समाज के लिए परिवार का त्याग कर देना चाहिए। जिन ऋषियों ने ये सिद्धान्त बनाए हैं ज़रा उनकी दृष्टि को देखिए कितनी दूर तक गई है। वर्तमान में हम परिवार के व्यामोह में पड़ कर समाज की हत्या करने में नहीं चूकते। भरत इस सत्य को समझते हैं, उनके सामने दोनों परिस्थितियां हैं। उन्होंने तुरन्त निर्णय लिया कि परिवार की अपेक्षा समाज के प्रति हमारा कर्त्तव्य अधिक महत्वपूर्ण है। इस निर्णय के साथ उन्होंने घोषणा की कि आज से तू मेरी माँ नहीं। मैं एक उत्तम कुल में पैदा हुआ हूं और सौभाग्य से मुझे दशरथ जैसा एक श्रेष्ठ आदर्श वाला पिता मिला, राम और लक्ष्मण जैसे भाई मिले लेकिन मेरा दुर्भाग्य -

जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाई ।

कि तेरी जैसी निकृष्ट बुद्धि वाली मां मुझे जन्म देने वाली बनी। विधाता के ऊपर किसी का कोई बस नहीं चलता। इस दोहे का एक महात्मा ने अर्थ किया है 'जननी तूं जननी भई ' हे जननी ! तू अपनी जननी के समान ही हुई , विधि के प्रति किसी का क्या बस चल सकता है।

कैकेई की जननी की एक कथा पढ़ने को मिलती है। कैकेई के पिता किसी ऋषि के कृपापात्र बने। ऋषि ने उनको वरदान दिया कि दुनिया में जितने प्राणी हैं सभी की भाषा का तुम्हें बोध होगा। एक दिन महाराज कैकेय नरेश भोजन कर रहे थे। भोजन के पात्र में से कुछ चावल बगल में गिर गए, एक चींटी आई और उस चावल को उठाकर जाने लगी। थोड़ी दूर वह गई इतने में एक दूसरी चींटी आई, वह उससे चावल छीनने लगी तो उस चींटी ने कहा कि भाई ! इतने चावल वहाँ पड़े हुए हैं तू जाकर वहाँ से क्यों नहीं ले लेती ? मेरे से क्यों छीन रही है ? दूसरी चींटी ने कहा कि बात यह है कि यह राजा ऋषि के वरदान से सभी प्राणियों की गति जानता है, भाषा जानता है, उनसे परिचित है।

मैं अपवित्र जाति की चींटी हूँ, इस समय वह भोजन कर रहा है और यदि मैं उसकी थाली के पास चली जाऊँगी तो यह अच्छा नहीं होगा। यह जो तिनका तुम्हारे पास है, वह तुम मुझे दे दो और तुम जाकर दूसरा ले आओ। चींटी की यह बात सुन कर राजा हंस पड़ा कि देखो छोटी सी चींटी भी इतना ध्यान रखती है। जब राजा हंसा तो रानी भोजन परोस रही थी। राजा को अकारण हंसते हुए देख करके रानी चौंक पड़ी और पूछा कि आप हंसे क्यों ? राजा ने कहा कि कोई ऐसी बात नहीं।

ऋषि ने यह भी बताया था कि यदि तुमने यह रहस्य किसी से बता दिया तो तुम्हारा शरीर पाषाण हो जाएगा। रानी ने पूछा कि आप हंसे क्यों? बिना बात के कोई हंसता ही नहीं। जरूर कोई बात होगी ? कहा - हां, बात तो है लेकिन बताने वाली नहीं। उसने कहा कि ऐसे कैसे हो सकता है, आपको बात तो बतानी ही पड़ेगी। त्रिया हठ शुरु हो गया। रानी ने कहा कि यदि आप बात नहीं बतायेंगे तो मैं प्राण त्याग दूंगी और यह अपराध आपको लगेगा। अंत में राजा ने हार कर कहा, देवी ! मैं जिस कारण से हंसा हूँ यदि मैं तुम्हें बता दूँ तो मेरा जीवन नष्ट हो जाएगा और मैं पाषाणवत् हो जाऊँगा। रानी ने कहा कि तुम चाहे पाषाण हो जाओ, चाहे वृक्ष हो जाओ लेकिन मेरे को बताओ कि हंसे क्यों ? राजा बड़े संकट में पड़ा। बहुत समझाया कि मेरे नष्ट हो जाने पर तुम विधवा हो जाओगी, राज्य नष्ट हो जाएगा। उसने कहा कि ये सारे बहाने मैं नहीं जानती, आप बताओ कि हंसे क्यों ? राजा ने सोचा कि यदि हमें पाषाण ही होना है तो चलो हरिद्वार में गंगा जी में खड़े होकर तुम्हें बता दूंगा और पाषाण हुआ तो गंगा जी में पड़ जाऊँगा और मेरा कल्याण हो जाएगा। दोनों हरिद्वार चल दिए। राजा रानी ही नहीं उनके साथ उनकी सारी व्यवस्था भी चली। वे कश्मीर से चले क्योंकि कैकेई कश्मीर की रहने वाली थी। कश्मीर से हरिद्वार आना कौन आसान काम था ? रथ में आना था, रास्ते में जंगल थे। वहाँ से राजा बड़ा दुःखी होकर चला।

एक दिन की बात जब जंगल मे पड़ाव पड़ा तो राजा अपने राजसी

वातावरण से अलग हो दूर जंगल में एक स्थान पर जाकर बैठ गया जिसके पास ही एक खाई थी। राजा चिन्तित था कि देखो स्त्री को समझाता हूँ कि मेरी जिंदगी नष्ट हो जाएगी लेकिन उसकी समझ में ही बात नहीं आ रही है। यदि बताता हूँ तब भी मुश्किल है, यदि नहीं बताता हूँ तब भी मुश्किल है। क्या किया जाए ? सायंकाल का समय था, राजा विचारों में डूबा हुआ था, इतने में गड़रिए बकरियां लेकर आ रहें थे। एक गर्भिनी बकरी थी। बकरा उसके साथ आ रहा था। वहाँ पहुँचे तो मलार के पास खड्डे में बड़ी-२ घास थी। बकरी ने बकरे से कहा कि वह घास तू मुझे ला दे। बकरे ने कहा कि बहुत अच्छा।

राजा तो पशु-पक्षी सबकी भाषा समझता था। राजा देखने लगा। बकरा गया, मुँह लपकाया लेकिन घास मिली नहीं, वह लौट आया। बकरी ने कहा कि मुझे तो घास चाहिए। उसने कहा, भाई ! यदि मैं घास प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ता हूँ तो हो सकता है मैं उस खड्ड में गिर जाऊँ। बकरी ने कहा कि तू चाहे गिर चाहे मर लेकिन मुझे तो घास चाहिए। जब यह बात बकरी ने कही तो बकरा थोड़ा सा पीछे हुआ और उसने पीछे से उसे दो सींग मारे। मारते हुए कहा कि क्या तूने मुझे वह मूर्ख राजा समझ रखा है जो स्त्री के कहने पर पत्थर बनने के लिए हरिद्वार जा रहा है । मैं वो राजा नहीं हूँ। जब दो सींग पीछे से मारे और पूछा अब बता हरी घास चाहिए? बकरी ने कहा कि नहीं अब नहीं चाहिए। यह बात राजा को लग गई क्योंकि वह तो सब की भाषा समझता था। राजा को बड़ी व्यथा हुई कि आज मैं इतना गिर गया कि एक बकरा भी मेरी निन्दा कर रहा है। यह बकरे वाला मामला मैं भी क्यों न स्वीकार कर लूं। राजा ने निश्चय किया कि यही रास्ता मुझे भी अपनाना पड़ेगा। राजा ने चाबुक उठाया और कैम्प में आ गया। रानी से कहा कि तुम्हें पता है कि मैं हरिद्वार चल तो रहा हूँ लेकिन मैं वहाँ पत्थर हो जाऊँगा। रानी ने कहा कि इतना ही है तो हमें वह बात यहीं बता दो। कहा कि यदि न बताऊँ तो ? उसने कहा, नहीं, बताना पड़ेगा। वह गुस्से में तो था ही, उसने सोटी उठाई और मारना शुरू किया। रानी ने कहा कि यह क्या कर रहे हो, यह तो अधर्म है। उसने कहा कि यदि यह अधर्म है तो जो

तुम करने जा रही हो, वह कौन सा धर्म है ? उसने जब दो सांटे और लगाए तो वह चीख पड़ी नहीं, नहीं , न मारो, अब नहीं पूछती, नहीं बताओ। राजा ने कहा कि अच्छा लौट पड़ो यहाँ से। वह लौट करके वापिस चली आई। महात्मा ने अर्थ किया कि महाराज भरत कहते हैं -

हंस बंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाई ।
जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाई ॥

(रा० २/१६१)

हे माँ ! तू तो बिल्कुल अपनी माँ जैसी हुई लेकिन मेरा बाप तेरे बाप जैसा नहीं बना, मैं क्या करूँ? भरत पूछते हैं -

जब तैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ ।
खंड खंड होई हृदय न गयऊ ॥

(रा० २/१६२-१)

अरि कुमति ! जब कुत्सित मति तुम्हारे हृदय में आई तो तुम्हारा हृदय टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो गया ? वरदान मांगते समय तुम्हें ज़रा सा भी दर्द नहीं आया ?

बर मागत मन भइ नहिं पीरा ।
गरी न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥

उस समय तेरी जिह्वा गल करके गिर क्यों न गई ? मुख में कीड़े क्यों नहीं पड़ गए ? इतना कह करके भी संतोष नहीं हुआ। यह छोटी सी बात नहीं है भरत ने बहुत कठोर बात कही है। आखिर में कह रहे हैं -

भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही ।

राजा ने तुम पर विश्वास कैसे कर लिया ? पति के नाते पत्नी पर विश्वास करना धर्म है लेकिन राजा के नाते पत्नी पर विश्वास करना अधर्म है। यह नीति शास्त्र की घोषणा है -

नदीनांच नखीना: च श्रृङीणां शस्त्रपाणिनाम् ।
विश्वासो नैव कर्त्तव्य: स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥

(चाणक्य नीति १/१५)

राजा के लिए यह नियम है कि वह इन पर विश्वास न करे। वे राजा होकर के तुम पर विश्वास कैसे कर लिये कि जो तुम मांगोगी वह ठीक ही होगा। नीति शास्त्र के विरुद्ध आचरण क्यों किया ? फिर स्वयं समाधान करते हैं-

मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही ॥

(रा० २/ १६२-३)

जिसकी मृत्यु निकट आती है विधाता उसकी मति को हर लेता है। यह बात याद रखो -

काल दंड गहि काहु न मारा ।

काल किसी को डण्डा लेकर नहीं मारता। मारता कैसे है ?

हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा ॥

(रा० ६/३७-७)

जब काल किसी के नज़दीक आता है तो उसकी चार चीजें हर लेता है - धर्म, बल, बुद्धि और विचार। भरत जी कहते हैं कि उनकी मृत्यु निकट आ गई थी इसलिए उन्होंने तुम पर विश्वास कर लिया। यह समाधान ही तो है अपने मन को समझाने का। फिर वो कहते हैं -

विधिहुँ न नारि हृदय गति जानी ।
सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥

(रा० २/१६२-४)

ऐसी नारी जो सम्पूर्ण कपट, अघ और अवगुण की खानि हो उसकी गति तो विधाता भी नहीं जानता, मेरे पिता तो बड़े धर्मात्मा, बड़े सुशील, बड़े सरल थे, वे कैसे स्त्री का स्वभाव समझ सकते थे।

सरल सुसील धरम रत राऊ ।
सो किमि जानै तीय सुभाऊ ॥

(रा० २/१६२-५)

भरत जी यह बात अपनी माँ और बाप को कह रहे हैं। इतना ही नहीं यहाँ पर एक बात और भरत जो कहने जा रहे हैं , बड़ी महत्त्व की बात है-

अस को जीव जंतु जग माहीं ।
जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं ॥

(रा० २/१६२-६)

दुनिया में कोई ऐसा जीव-जन्तु नहीं है जिसको राम प्राण से अधिक प्यारे न हों -

भे अति अहित रामु तेउ तोही ।

(रा० २/१६२-६)

वे राम जिसको सारे जीव-जन्तु प्यार करते हैं वे तुम्हारे लिए अहितकर क्यों हो गए ? इसका अभिप्राय कि तू जीव-जन्तुओं से भी गई गुज़री है -

को तू अहसि सत्य कहु मोही ।

तू मुझे बता तू है कौन ? तू जीव नहीं जन्तु नहीं -

जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी ।
तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी ॥

(रा० २/ २६२-८)

जिस राम को देख करके रास्ते के सांप बिच्छू भी अपने विष का त्याग कर देते हैं, वे राम तुम्हें अप्रिय क्यो लगे ? मुझे विश्वास नहीं कि तुम इस प्रकार के हिंसक जंतुओं में हो। मेरे को तो ऐसा लग रहा है कि तू इनसे भी कोई नीचे का प्राणी है। कैकेई सारी बात मौन होकर सुन रही है। अंत में कहते हैं -

जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई ।
आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥

(रा० २/१६२-८)

चाहे जो कुछ तू है, अब अपने मुँह पर कालिख लगा करके मेरी आँखों के सामने से चली जा, फिर मेरे सामने कभी नहीं आना। मां के लिए भरत के ये अंतिम शब्द थे। भरत जैसे सदय हृदय व्यक्ति ने इतने कठोर शब्दों में माँ का तिरस्कार क्यों किया, जानते हो ? यदि भरत इस प्रकार से माँ की अवहेलना न करते तो समाज एक महान् गर्त की दिशा में आगे बढ़ जाता। मर्यादा की प्रतिष्ठा कोई खेल नहीं है। यदि आप अपने प्रियजनों के द्वारा किए गए अन्याय को कड़ाई के

साथ प्रतिकार करने के लिए तत्पर नहीं हैं तो आप समाज के नेतृत्व के योग्य भी नहीं हैं। यह राम राज्य की स्थापना की नीव है। कोई भी व्यक्ति जो समाज द्रोही है, जो धर्म द्रोही है, वह अपना कितना भी प्रिय क्यों न हो, कितना भी निकट का क्यों न हो, वह कठोर दण्ड का पात्र है। यदि वह राज परिवार का है तो विशेष दण्ड का पात्र है। क्यों, कारण क्या ? इसलिए कि वह समाज के प्रति अधिक उत्तरदायी होता है। आप लोग शायद इस बात से परिचित होंगे कि जो कानून नहीं जानता वह यदि कानून का उलंघन कर दे तो कुछ मात्रा में वह क्षम्य हो जाता है। उसका अपराध कम माना जाता है लेकिन कानून को जानते हुए कानून का उलंघन करना यह दण्डनीय अपराध माना जाता है इसलिए भरत जी बड़ी कठोरता के साथ अपनी माँ के द्वारा किए गए अत्याचार का प्रतिकार करते हुए उसका सदा के लिए परित्याग कर देते हैं। तुलसीदास जी लिखते हैं -

कैकेयी जौलों जियति रही।
तौंलों बात मातुसों मुँह भरि भरत न भूलि कही॥

(गीतावली उत्तर. ३७/१)

विनय पत्रिका में उन्होंने कहा -

तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।

(वि०प० १७४)

भरत ने महतारी का त्याग कर दिया। जो राम द्रोही है, जो धर्म द्रोही है और जो समाज द्रोही है, उसके लिए यदि तुम्हारे हृदय में किंचित मात्र भी आदर होगा तो याद रखो तुम समाज में नेतृत्व प्रदान करने के योग्य नहीं माने जाओगे। थोड़ी देर के लिए मान लो कि भरत राज्य नहीं करना चाहते थे तो न करते लेकिन माँ का इतना अपमान न करते, क्या इससे बात न बन जाती ? कहा - नहीं। अपराधी को बिना दण्ड दिए यदि उसके अपराध का किसी भी प्रकार से निराकरण कर दिया जाए तो बात बनती नहीं। अपराधी को दण्ड देना परमावश्यक है। किसके लिए ? अपराधी के लिए नहीं समाज के लिए। अन्यथा समाज में एक प्रकार की अव्यवस्था का जन्म हो जाता है। इस बात को भरत जी

अच्छी प्रकार से जानते हैं इसलिए उन्होंने अपने गुरुजनों के सामने घोषणा की-

कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू ।
चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥

(रा० २/१७९ -१)

राजा हमेशा धर्मात्मा होना चाहिए, यह मैं सत्य कहता हूँ, मेरे वचनों पर विश्वास करो। जो धर्मात्मा नहीं है वह राज्यगद्दी का अधिकारी नहीं है। परिणाम में कहा-

मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं ।
रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥

(रा० २/१७९-२)

यदि आप लोगों ने मुझे जबरदस्ती राज्य दिया तो यह पृथ्वी रसातल को चली जाएगी। पृथ्वी को धारण करने वाला कौन है ? धर्म

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा ।

(नारायणोपनिषद् ७९)

मुझे राज्य देना धर्म नहीं होगा अधर्म होगा। फिर तो यह रास्ता बन जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति यह सोचेगा कि दूसरे को धोखा दो और उसके सत्त्व को ले लो। तब तो यह प्रथा चल जाएगी कि जब राजा यह कर रहा है, राजकुल में यह चल रहा है तो दूसरा क्यों न करे। फिर यह दुनिया के लिए, समाज के लिए, प्रजा के लिए गलत दिशा उपस्थित हो जाएगी और प्रत्येक व्यक्ति यही अणुकरण करने लगेगा क्योंकि राजतन्त्र का यह नियम है यथा राजा तथा प्रजा। प्रजातन्त्र का यह नियम नहीं है। प्रजातन्त्र में तो यथा प्रजा तथा राजा क्योंकि आप में से ही M.L.A. बनते हैं, M.P. बनते हैं। वही आगे जाकर मंत्री बनते हैं। आपके द्वारा ही प्रधानमन्त्री चुना जाता है। आपके द्वारा राष्ट्रपति चुना जाता है। आप जैसे होंगे वैसे ही वो चुने जायेंगे। आपकी यह शिकायत ठीक नहीं गलत है कि नेता भ्रष्ट हो गए क्योंकि नेता आपने बनाये हैं। आप नेता बढ़िया समझ कर नहीं भेजते।

चन्द टुकड़ों पर, थोड़े से लालच पर आप अपने अमूल्य मत को समर्पित कर देते हैं। आप गुण नहीं देखते, कहीं आप अपना सम्बन्ध देख लेते हैं, कहीं जाति देख लेते हैं, कहीं वर्ग देख लेते हैं या स्वार्थ देख लेते हैं कि यह यदि आगे मन्त्री बन गया तो हमारे स्वार्थ की सिद्धि में सहायक होगा। अनेक प्रकार की प्ररेणाओं से प्रेरित होकर के आप अपने नेताओं का चयन करते हैं। जो दस लाख रूपए लगा कर M.L.A बनता है, क्या सही में आपको विश्वास है कि वह सेवा करने जा रहा है ? वह तो जितना लगाया है उससे दूना बनायेगा। वह सब आपकी ही जेब से जायेगा इसलिए प्रजातन्त्र में यथा प्रजा तथा राजा होता है।

एक बार हमारे साथ कई महात्मा थे, हम लोग बैठे सत्संग कर रहे थे। कुछ सज्जन लोग बैठे हुए थे। एक सज्जन उठकर खड़े हो गए, उन्होंने कहा -'महाराज ! हम लोगों के मार्गदर्शक तो महात्मा लोग हैं लेकिन हम देखते हैं कि आजकल महात्मा लोग ही अपने कर्त्तव्य से बदल गए हैं, हम क्या करें ? हम ने कहा कि भले आदमी ! महाभारत पढ़ी है कभी? महाभारत की एक घटना है। जब भीष्मपितामह वाणों की शैय्या पर पड़े थे तो पांचों पाण्डव उनसे उपदेश लेने वहाँ जाते थे। भगवान् कृष्ण भी वहाँ खड़े रहते थे। भीष्म पितामह उनके सारे प्रश्नों के उत्तर देते जाते थे। द्रौपदी खड़े-खड़े आश्चर्य चकित रह गई कि पितामह को इतना सूक्ष्म ज्ञान, इतना तत्त्वज्ञान आज कहाँ से प्रकट हो गया? जब उससे नहीं रहा गया तो उसने प्रश्न कर दिया कि पितामह ! आज आप से जो भी प्रश्न किया जा रहा है, आप उसका उत्तर दे रहे हो। इतना बड़ा ज्ञान आपका प्रकट हो गया। यह ज्ञान उस समय कहाँ चला गया था जिस समय सभा में मैं नग्न की जा रही थी ? उस सभा में मैंने प्रश्न किया था कि क्या स्त्री पुरुष की सम्पत्ति है ज़िसको पुरुष जुए पर हार जाए ? उस समय आपने मेरे इस छोटे से प्रश्न का उत्तर नहीं दिया था। आपका यह ज्ञान कहां चला गया था? पितामह ने उत्तर दिया 'पुत्री! उस समय मैंने दुष्ट दुर्योधन का अन्न खाया था, मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी इसलिए मैं तेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। अब इस रणक्षेत्र में मैंने उस अन्न के बदले में अपने खून को बहा दिया है। मेरा कर्ज उतर

गया है। मल धुल गया है इसलिए अब मैं शुद्ध चित्त हो गया हूँ। मेरा ज्ञान जैसे पहले था वैसा प्रकट हो गया है। मैंने कहा कि श्रीमान् ! इसका अर्थ कुछ समझो? भीष्मपितामह जैसे व्यक्ति यदि दुष्ट दुर्योधन का अन्न खा करके बुद्धि भ्रष्ट कर सकते हैं तो महात्मा लोग कोई खेती तो नहीं करते, न हल चलाते हैं, न दुकान करते हैं। अरे भाई ! आप लोग उन्हें जो खिलाते हो वही वे खाते हैं। आपका अन्न जैसा होगा वैसी ही उनकी बुद्धि बनेगी। 'जैसा खाए अन्न वैसा होए मन'। आप अपनी शुद्ध कमाई का अन्न खिलाओ उन्हें, उनसे शुद्ध ज्ञान प्राप्त करोगे तथा शुद्ध दिशा प्राप्त करोगे। जब तुम उन्हें अपवित्र अन्न खिलाओगे तो वे तुम्हें पवित्र ज्ञान कहाँ से देंगे ?

मैं प्रार्थना कर रहा था कि मनुष्य को सजग हो करके जीवन के हर पहलु पर विचार करना चाहिए। महात्मा भरत के सामने एक बड़ी समस्या थी- माँ की आज्ञा का पालन या माँ का तिरस्कार। यदि वे धीरे से माँ से कह देते कि अच्छा देवी तू जा, मैं तो तेरी बात नहीं मानता तब भी वो अपराध से मुक्त न हो पाते। उन्होंने तिरस्कार के साथ माँ का त्याग कर दिया और माँ का परित्याग करने के पश्चात् माँ कौशल्या के पास गए। कौशल्या की स्थिति बड़ी दु:खद थी। कौशल्या के चरणों में गिर के भरत ने प्रार्थना की और वहाँ पर उन्होंने सौगन्ध खाई। वह सौगन्ध मनुष्य के लिए बहुत बड़ा संदेश है। उन्होंने कहा कि यदि राम के वन गमन में मेरा मत हो -

जे पातक उपपातक अहहीं।
करम बचन मन भव कबि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता।
जौं यहु होइ मोर मत माता॥

(रा० २/१६७-७,८)

जो कवियों ने मन से, वचन से, कर्म से बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा पातक कहा है, वो सारा पाप मुझे लग जाए। कब लग जाए ?-

जौं यहु होइ मोर मत माता॥

हे माता! यदि राम वन गमन में मेरा मत हो तो मैं सारे पापों का भागी बन जाऊँ। आगे उन्होंने कहा है -

ने परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥

(रा० २/१६७)

हे माता! यदि राम के वन गमन में मेरी मति हो तो मुझे वो गति मिले जो भूत प्रेत की पूजा करने वालों को मिलती है। भूत, प्रेत पूजने वाले की क्या गति होती है? तुलसीदास जी दोहावली रामायण में लिखते हैं -

तुलसी परिहरि हरि हरहि पांवर पूजहिं भूत।
अंत फजीहत होहिंगे गनिका के से पूत॥

(दोहावली ६५)

जो गति वैश्या के पुत्र की होती है, वही गति होती है भूत, प्रेत और मजार कब्र पूजने वालों की। इतने महापुरुष हो गए हैं उनका ध्यान न करके नौ गजा पीर पूजने के लिए देवियां पहुँच जाती हैं, इसमें इन्हीं का कसूर नहीं है, इनको यह समझाया गया है कि यह दरगाह, यह मजार, यह पीर, यह प्रेत तुम्हारा यह कर देगा वो कर देगा। जिसके परिणाम स्वरूप परमात्मा को छोड़कर भूतप्रेत की पूजा करते हुए जीते जी प्रेत का जीवन बितातें हैं और मर करके भी प्रेत योनि को ही प्राप्त होतें हैं -

ताँ स्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।

(ईशोपनिषद् -३)

यह आत्म हत्यारे की गति प्राप्त करने वाला रास्ता है लेकिन फिर भी लोग करते हैं। भरत जी ने यह प्रतिज्ञा की कि जो गति भूत-प्रेत पूजने वाले की होती है माँ, वह दुर्गति मेरी भी मरने के बाद हो यदि मैं राम वन गमन में सहमत हूँ। भरत को क्या गर्ज पड़ी थी इतनी सौगन्ध खाने की? सौगन्ध खाने के बाद भी भरत जी ने यह बात कही -

क्यों हौं आजु होत सुचि समथनि? कौन मानिहै साँची?।

आज मैं शपथ खा कर कैसे पवित्र हो सकता हूँ? मेरी इन शपथों के ऊपर कौन विश्वास करेगा ? कौन मानेगा कि मैं सच्चा हूँ? कोई नहीं मान सकता। भरत जी कहते हैं -

महिमा-मृगी कौन सुकृतीकी खल-बच-बिसिषन बाँची ? ।

(गीतावली २/६२-२)

दुनिया में कौन ऐसा है जिसकी महिमा रूपी मृगी को दुष्ट के वचन रूपी बाण न लगे हों ? इसलिए मुझे इसकी परवाह नहीं है कि दुनिया मुझे क्या कहती है। हाँ, इतना जरूर है कि मैं अपनी तरफ से शुद्ध हूँ। आगे चलकर जब वो राम को मनाने के लिए जाते हैं तो यह भी कहते हैं -

जानहुँ राम कुटिल करि मोही ।
लोग कहउ गुर साहिब द्रोही ॥

(रा० २/२०५-१)

राम भी मान लें कि मैं कुटिल हूँ और सारी दुनिया कहती रहे कि यह गुरु और साहिब का द्रोह करने वाला है लेकिन -

सीता राम चरन रति मोरें ।
अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ॥

(रा० २/२०५-२)

हे भगवती त्रिवेणी ! भगवान् सीता राम के चरणों में मेरा अनुराग नित्य प्रति बढ़ता ही जाए। इसको एकांगी प्रीति कहते हैं। भरत बड़े सजग हैं अपने प्रति, अपने कर्त्तव्य के प्रति और अपने समाज के प्रति इसलिए माँ कौशल्या के समक्ष जाकर भी वो अनेक प्रकार की सौगन्धें खाते हैं और माँ कौशल्या उनको हृदय से लगाकर कहती है -

बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी ।
होइ बारिचर बारि बिरागी ॥

(रा० २/१६९-२)

चन्द्रमा से जो अमृत गिरता है उसकी जगह विष गिरने लगे, हिम से जो ठण्डक

बरसती है उसकी जगह आग बरसने लगे और मछली जो जल में रहती है वह निश्चय कर ले कि आज से हमें जल में नहीं रहना अर्थात् यह असम्भव सम्भव हो जाए लेकिन मैं जानती हूँ कि तुम राम के प्रतिकूल नहीं हो सकते। यह माँ का विश्वास है -

भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू।
तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥

(रा० २/१६९-३)

ज्ञान होने पर मोह न मिटे, मोह बना रहे, यह असम्भव सम्भव हो जाए लेकिन राम के प्रतिकूल तुम कभी नहीं हो सकते, यह मेरा विश्वास है। साथ ही माँ ने श्राप दे दिया -

मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं।
सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥

(रा० २/१६९-४)

जो यह कहेगा कि राम वन गमन में भरत का भी मत है वह स्वप्न में भी न तो सुख लेगा और न सुन्दर गति ही -

अस कहि मातु भरतु हियँ लाए।

ऐसा कहते हुए माँ कौशल्या ने भरत को हृदय से लगा लिया। हृदय से लगाने का परिणाम जानते हो क्या हुआ ?

थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥

(रा० २/१६९-५)

माँ के स्तनों से दूध बहने लगा और नेत्रों से आंसू बह रहे हैं। क्या स्थिति होगी माँ कौशल्या की ? सारी प्रजा देख करके क्या कह रही है ?

राम मातु अस काहे न होई॥

(रा० २/१६५-३)

राम की माता है, राम ऐसे पुत्र को जन्म देने वाली माता कोई सामान्य नहीं हो सकती।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि महात्मा भरत अपनी विवेक बुद्धि से इस प्रकार के दो विरोधी धर्मों की स्थिति में - समाज के प्रति आदर्श की प्रतिष्ठा रूपी लोक संग्रह रूपी धर्म को उन्होंने वरण किया और जो पारिवारिक धर्म या शारीरिक धर्म था, उस का उन्होंने त्याग कर दिया। समस्या यहीं समाप्त नहीं हुई। आगे इससे भी बहुत बड़ी समस्या उनके सामने खड़ी हो गई। उस समस्या का समाधान भरत जी ने किस प्रकार किया, यह कल बतायेंगे।

हरि ॐ तत्सत्

(५)

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ।

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। कल मैंने आप लोगों को एक बात समझाई थी कि जिस समय व्यक्ति के समक्ष कर्त्तव्य की दो महत्त्वपूर्ण स्थितियां एक दूसरे के सामने विरोधी रूप में खड़ी हो जाएँ उस स्थिति में मनुष्य को उन दोनों में से किसका वरण करना चाहिए? यह बात किसी एक के समक्ष नहीं, जीवन में कई बार प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष उपस्थित हुआ करती है। आपके जीवन की दैनिक क्रियाओं में भी यह बात प्रतिदिन आती है। पारिवारिक हित और सामाजिक हित, इन दोनों में अधिमान किसे दिया जाए? समाज के हित के लिए पारिवारिक हित का बलिदान किया जाए या पारिवारिक हित के लिए सामाजिक हित का बलिदान किया जाए ? ऐसी स्थिति में आप क्या करते हैं, यह आप जानते हैं अच्छी प्रकार से। इस बात को स्वीकार करने में जरा भी संदेह के लिए स्थान नहीं है कि जहाँ आपका व्यक्तिगत हित पारिवारिक हित के साथ टकराता है वहाँ आप पारिवारिक हित की चिन्ता न करके व्यक्तिगत हित के लिए आगे बढ़ जाते हैं और जहाँ आपका पारिवारिक हित सामाजिक हित के साथ टकराता है वहाँ पर आप सामाजिक हित को बड़ी प्रसन्नता के साथ तिलांजलि देकर के पारिवारिक हित में स्वयं को लगा देते हैं। ऐसी स्थिति में भी आप कहते हैं कि आप धर्म निष्ठ हैं, आप भगवान् के भक्त

और सही माने में मानवता के पुजारी हैं। मेरे विचार से इससे अधिक और मानवता का उपहास आप क्या कर सकते हैं ?

भारतीय दर्शन में व्यक्ति स्वयं में इकाई नहीं है, वह समाज का एक अंश है। पाश्चात्य दर्शन में व्यक्ति समाज का अंश नहीं है, वह स्वयं में इकाई है। पश्चिम के समाज शास्त्रियों ने समाज की रचना के मूल को ढूँढ़ते हुए इस तथ्य को उजागर किया कि व्यक्ति स्वयं में एक इकाई है और व्यक्तियों के समूह का नाम समाज है। समाज स्वयं में कुछ नहीं है। इससे क्या हुआ? समाज कार्य हो गया और व्यक्ति स्वयं में कारण बन गया। आप ज़रा तर्क देखिए! जब आप व्यक्ति को इकाई मानते हैं, मूल मानते हैं तो व्यक्ति कारण होता है और समाज उसका कार्य बन जाता है। यह प्राकृतिक नियम है कि कार्य का समर्पण सदैव कारण के लिए हुआ करता है। कारण की रक्षा के लिए कार्य की बलि दी जाती है क्योंकि कारण शाश्वत है और कार्य काल्पनिक है। इसी दृष्टि से पश्चिम के समाज शास्त्रियों ने कंहा है कि व्यक्ति अविनाशी है और समाज काल्पनिक है लेकिन भारतीय समाज शास्त्र में बिल्कुल इससे उल्टा दृष्टिकोण दिया गया है। यह दृष्टिकोण आज से नहीं वैदिक काल से चला आ रहा है। वैदिक काल से आज तक की जो भारतीय मनीषा की अनुभूति और उपलब्धि है उसमें इस सत्य की घोषणा की गई कि व्यक्ति इकाई नहीं है व्यक्ति अंग है। किसका अंग है व्यक्ति ? समाज का। समाज अंगी है। समाज शास्त्र का सूत्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के ९० वें सूक्त में हमें प्राप्त होता है जिसको पुरुष सूक्त कहते हैं। वहाँ पुरुष तत्त्व की खोज करके यह बात बताई गई है कि पुरुष मूल तत्त्व है। यह सारा विराट् विश्व उसी का अभिव्यक्त स्वरूप है। आप अपने शरीर की रचना की तरफ ध्यान देंगे तो आपको इस यथार्थ का बोध होगा कि आपका शरीर परमाणुओं के संघात के सिवा कुछ नहीं है। परमाणु ही विभिन्न प्रकार के Cells के रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। जीवाणुओं के संघात को Tissue और Tissues के संघात को Limbs कहते हैं। Limbs के संघात को शरीर कहते हैं। जैसे परमाणु इस स्थूल शरीर की इकाई है ऐसे ही पश्चिम के वैज्ञानिकों ने मनुष्य को समाज की इकाई मान लिया। इसमें

आपत्ति क्या है ?

आप ज़रा गम्भीरता से विचार करेंगे तो आपको पता चलेगा कि पश्चिम वालों को यह भ्रान्ति हुई थी कि परमाणु स्वयं में इकाई है लेकिन उन्होंने देखा कि जो कारण होता है वह Individual नहीं होता, वह Limited नहीं होता और वह अनेक नहीं होता। परमाणुओं में भिन्नता है, उनमें Limitation है। जो सीमित है वह कारण नहीं हो सकता, वह कार्य है। कारण का पता लगाने के लिए वैज्ञानिकों ने उस अणु को तोड़ा। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि Whatever is breakable that is not cause but effect. Because whatever is breakable that is component and whatever is component that is effect not cause in itself. उन्होंने अणु को तोड़ा तो उसमें उन्हें Electron, Proton, Neutron तीन प्रकार के तत्त्वों का बोध हुआ। अब उन्होंने स्वीकार कर लिया कि ये तीन तत्त्व जो हैं ये कारण हैं। और यह सिद्धान्त वहां भी काम करता रहा कि Cause must be one and absolute. That can not be limited and so many. उन्होंने उसको तोड़ा और जिस परिणाम पर वे पहुँचे हैं उसका नाम दिया है Energy. What energy is ? That is beyond description. Limitless, weightless, formless and colourless. जितने नकारात्मक विशेषण हैं सारे उसके लिए प्रयोग कर दिए जाते हैं। हमारी भाषा में उसे अव्यक्त कहते हैं। वह अव्यक्त ही इस दृश्य जगत् का मूल कारण है। आप अब यह बताईए कि व्यष्टि से समष्टि का निर्माण हुआ है या समष्टि से व्यष्टि की अभिव्यक्ति हुई है? Whatever we are seeing in gross form that is projection of infinite cause. It does't mean that infinity is ths effect of that whatever we are seeing in gross form or gross matter. इस बात को वे अब समझने लगे हैं। भारतीय ऋषियों ने शुरू से यह कहा है कि तुम्हारे अस्तित्त्व का, तुम्हारे व्यक्तित्व का और तुम्हारे कर्तृत्व का आधार सीमित नहीं असीम है, अनन्त है। यदि आप उस अनन्त से अपने आपको अभिव्यक्त हुआ अनुभव करने लगें, इस यथार्थ का यदि आपको बोध हो जाए तो जानते हैं क्या होगा? आपके जीवन की सारी दिशा उस अनन्त की तरफ हो जाएगी। अनन्त की आप अभिव्यक्ति हैं, यह काल्पनिक सत्य नहीं अनुभूत

सत्य है। बड़े विश्वास के साथ मैं बता सकता हूँ कि इस परम सत्य का मैंने अनुभव किया है आपकी इस उदयपुर की ही धरती पर इसलिए मैं आपको बता रहा हूँ कि भारतीय ऋषियों ने अनुसंधान की प्रक्रिया से उस कारण तत्त्व का अनुभव किया और यह घोषणा की -

पुरुषऽएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

(पुरुष सू० २)

जो पहले था, जो अब है और जो आगे होगा, यह सब 'पूर्णं करोति इति पुरुषः' जो विश्व को परिपूर्ण किए हुए है, उस एक पुरुष के सिवाय कुछ भी नहीं है-यह उनका अपना अनुभव था और उसी के आधार पर हमारी समाज रचना हुई। जो यहाँ व्यष्टि है, (व्यक्ति है) वह उस समष्टि का अंग है, विराट् का अंग है। उस विराट् से भिन्न नहीं है। भगवान् ने गीता के सातवें अध्याय में यह घोषणा की -

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिंद प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

(गीता ७/७)

यह तो इस अध्याय में बताया लेकिन ग्यारहवें अध्याय में बताया ही नहीं बल्कि अर्जुन की प्रार्थना पर उसे स्पष्ट दिखाया कि तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा तो यह देखले तू। अर्जुन कहता है कि मुझे स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा तो भगवान् कहते हैं कि इन आंखों से तू नहीं देखेगा, देखने वाली तो अन्तर की आँख होती है।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः ।

(गीता ११/८)

'मैं तुम्हें वह दिव्य दृष्टि देता हूँ।' दिव्य दृष्टि माने बुद्धि दृष्टि व विवेक दृष्टि। ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा इस यथार्थ का अनुभव होता है। भारत में योगी और ऋषि लोग करते रहे हैं, कर रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे। यह प्रक्रिया कभी बन्द होने वाली नहीं है इसलिए जो इस रहस्य को जानता है, वह व्यष्टि के लिए समष्टि का अहित नहीं करता क्योंकि वह जानता है कि समष्टि के अहित में व्यष्टि का कभी हित हो ही नहीं सकता। समाज के अहित में व्यक्ति का कभी हित

नहीं हो सकता, हित की भ्रान्ति हो सकती है। समाज के हित में ही व्यक्ति का हित निहित है, इस सत्य को वह जानता है इसलिए क्षणिक भ्रान्त धारणा में पड़ करके वह व्यक्ति कभी भी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए, पारिवारिक स्वार्थ के लिए समाज के हित की उपेक्षा नहीं करता। तभी तो उसको धर्मात्मा कहते हैं। धर्मात्मा माने वह धर्म तत्त्व जो इस अनन्त ब्रह्माण्ड की मूल भित्ति है जिसके ऊपर वह अनन्त ब्रह्माण्ड प्रतिष्ठित है-

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा ।

(नारायणोपनिषद् -७९)

उस धर्म का वह सदैव अनुभव कर रहा है, उस का त्याग कैसे कर सकता है वह? उस धर्म के प्रकाश में ही वह जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप को स्वीकार करता है।

महात्मा भरत धर्म की साकार मूर्ति हैं। जब महात्मा भरत के सामने यह प्रश्न आया कि व्यक्तिगत हित, पारिवारिक हित और सामाजिक हित, इन तीनों में से किसे वरण किया जाए तो महात्मा भरत ने बड़ी दृढ़ता के साथ व्यक्तिगत हित और पारिवारिक हित का त्याग कर सामाजिक हित का वरण किया। उन्होंने माँ का त्याग कर दिया। इतना ही नहीं जब महाराज दशरथ की अन्त्येष्टि हो गई तो गुरुदेव वशिष्ठ ने अयोध्या के सम्पूर्ण विद्वानों को, वहाँ के श्रेष्ठीजनों को, महाजनों को, वहाँ के रक्षक और शासक वर्ग के मूर्धन्य लोगों को राज्य सभा में आमन्त्रित किया। जब सभा में आकर सभी बैठ गए तो गुरु विशिष्ठ जी ने भरत को बुलाया। भरत जी ने आकर प्रणाम किया और बैठ गए। गुरु विशिष्ठ ने कहा कि भरत बड़ी दुःखद घटना घटी है। अचानक अयोध्या के ऊपर वज्र का प्रहार हो गया जिससे सारी अयोध्या तहस-नहस हो गई है। जो कुछ होना था हो गया उस पर किसी का कोई बस नहीं था और अपनी विवशता भी व्यक्त की-

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।

व्यथित हृदय से वशिष्ठ जी ने कहा कि भरत भावी बड़ी प्रबल है। भावी माने

होनहार।

हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ ॥

(रा० २/१७१)

कहा कि वत्स! मनुष्य के जीवन का कोई भी ऐसा पहलू नहीं है जिसमें मनुष्य स्वतन्त्र हो। हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश, ये उसके बस की बात नहीं है। मनुष्य तो एक अल्पज्ञ और परतन्त्र प्राणी है। वह विधाता के नियमों के विपरीत तो कुछ कर ही नहीं सकता। वशिष्ठ जी जानते थे कि यह जो कुछ हुआ है यह सब दैवी विधान की प्रक्रिया में हुआ है। राम का वन गमन, महाराज दशरथ की मृत्यु और कैकेई का वरदान, ये सब दैवी प्रक्रिया की एक कड़ी रही है इसलिए इसमें किसी का दोष नहीं है। भरत सिर नीचे किए हुए पूछते हैं - ' क्या आज्ञा है ? ' गुरुदेव कहते हैं कि आज्ञा तुम्हें मैं नहीं देता, तुम्हें आज्ञा तुम्हारे पिता ने दी है। वत्स ! मेरी बात मानो तुम -

नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना ।
करहु तात पितु बचन प्रवाना ॥

(रा० २/१७४-५)

तुम्हारे पिता को अपना वचन प्रिय था प्राण प्रिय नहीं था। वचन की रक्षा के लिए उन्होंने प्राण का त्याग कर दिया। पुत्र होने के नाते उस पिता के वचन को प्रमाणित करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। पिता का वचन क्या था ? कहा -

राँय राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा ।
पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥

(रा० २/१७४-३)

राजा ने राम को वनवास दे दिया और राम पिता की आज्ञा मान वन को चले गए। तुम्हारे लिए राजा ने वनवास नहीं राजपद दिया है इसलिए पिता की आज्ञा को सत्य करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। अब आप सोचिए कि माँ का तिरस्कार करके माँ की आज्ञा का उलंघन करना बहुत सरल बात थी। था तो कठिन लेकिन एक साहसी के लिए बहुत सरल कार्य था। इस समय जो भरत के सामने

संकट उपस्थित होने जा रहा है, यह सामान्य नहीं है। पिता की आज्ञा है कि तुम राज्य करो। कहने वाला कौन है ? गुरु वशिष्ठ। वशिष्ठ जी कहते हैं -

तजे रामु जेहिं बचनहि लागी।

जिन वचनों के लिए पिता ने राम का त्याग कर दिया और -

तनु परिहरेउ राम बिरहागी ॥

(रा० २/१७४-४)

राम के वियोग में अपना शरीर छोड़ दिया, उस पिता के वचनों को तुम इन्कार कैसे कर सकते हो ? कहा कि गुरुदेव ! पिता यदि कोई गलत बात कह दे तो ? अधर्म युक्त बात कह दे तो ? गुरुदेव ने कहा कि तुम्हें पता है -

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ॥

(रा० २/१७४)

उचित और अनुचित का विचार किए बिना जो पिता की आज्ञा शिरोधार्य करता है, वह जीते जी सुख और सुयश प्राप्त करता है और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। तुम जानते हो कि धर्म के निर्णय में मुख्य बात तीन मानी जाती हैं -वेद, स्मृति और सदाचार। उसमें भी सदाचार अधिक महत्त्व रखता है। महाभारत में युद्धिष्ठिर ने सदाचार को ही आम लोगों के लिए आदर्श बताया -

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुह्यायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

(वन पर्वाणि आरण्य० ३१३/११७)

जिस रास्ते से महापुरुष गए हों उस रास्ते से चलना तुम्हारा कर्त्तव्य है। भरत जी ने प्रार्थना की कि भगवन् ! क्या किसी ने पिता की आज्ञा मान करके अधर्म का आचरण किया है ? किया है -

परसुराम पितु अग्या राखी।

मारी मातु लोक सब साखी ॥

(रा० २/१७४-७)

महात्मा परशुराम ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए अपनी माँ का वध कर दिया था, तुम्हें मालूम नहीं है ? गुरुदेव ! मालूम तो है। कहा कि परशुराम जैसे महापुरुष पिता की आज्ञा सुनते ही यह नहीं विचार कर सके कि माँ तो पिता से भी अधिक पूज्या है, उसका वध क्यों करूँ तो तुम पिता की आज्ञा का उलंघन कैसे करोगे ? भरत जी ने कहा कि गुरुदेव ! क्षमा करें , परशुराम अपने पिता की गरिमा को, उनकी महिमा को, उनकी शक्ति को और उनके सामर्थ्य को जानते थें। परशुराम के पिता जमदग्नि का सामर्थ्य कैसा था जानते हो आप ?

एक दिन की बात जहाँ ऋषि रहते थे बगल में बहुत बड़ी झील थी जो कि अब भी है। परशुराम की माता रेणुका उस झील पर गई। सायंकाल का समय था। जैसे लोग झील के किनारे बैठ जाते हैं ऐसे ही वह अकेली जाकर झील के किनारे बैठ गई और वहाँ देखा कि दो मत्स्य नर और मादा आपस में क्रीड़ा कर रहे थे। मछलियों को क्रीड़ा करते देख करके उसके हृदय में वासना जागृत हो गई कि मैं भी जाकर अपने पति के सा क्रीड़ा करूँ। सायंकाल का समय था जमदग्नि जी जा रहे थे संध्या करने। इतने में उसने आकर के उनका हाथ पकड़ लिया। उन्होंने उसकी तरफ देखा और कहा कि क्या बात है, देवी ? उसने अपनी अभिलाषा व्यक्त कर दी। अपने पति से ही अभिलाषा व्यक्त की किसी गैर से तो नहीं की लेकिन ऋषि को तो अंगूठे से लेकर सर तक क्रोध आ गया। उन्होंने कहा कि तुम्हें पता नहीं कि यह संध्या का समय ईश्वर के साथ एकता का समय है न कि विषय का। तुम इसके योग्य नहीं कि मेरी धर्मपत्नी बन कर जीवित रहो। उन्होंने तुरन्त अपने लड़के को आज्ञा दी कि तुम इसका सिर काट लो। लड़के ने कहा कि यह मेरे से नहीं होगा। दूसरे लड़के को बुलाया और उसे अपनी माँ और अपने भाई का सिर काटने के लिए कहा जिसने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया था। दूसरे लड़के ने भी जब यह कार्य करने से

इन्कार कर दिया तो उनका क्रोध और बढ़ गया। तीसरा और सबसे छोटा लड़का था परशुराम। वे सामने आ गए और पूछा - पितृदेव क्या आज्ञा है ? तुम इन तीनों का सिर काट लो। उन्होंने फरसा उठाया खट-खट-खट तीनों को मार दिया। जमदग्नि जी प्रसन्न हो गए। वाह! मेरे पुत्र, तू यथार्थ में मेरा पुत्र है। अब तुम वरदान मांगो, क्या चाहते हो ? परशुराम ने पिता के चरण पकड़ लिए और कहा - पितृदेव ! आप जैसे पिता की कृपा जिस पर हो उस पुत्र के लिए क्या कमी है। हमें और कुछ नहीं चाहिए। कहा कि फिर क्या चाहिए ? मुझे चाहिए मेरे दोनों भाई और माँ का जीवन और इन्हें यह स्मरण भी न हो कि मैंने इनका वध किया है। पिता प्रसन्न हो गए।

भरत जी ने कहा कि जमदग्नि ऋषि इतने महान् थे कि मृतकों के कटे हुए सिर को जोड़ कर उन्होंने उन्हें नया जीवन दे दिया। ऐसे पिता की आज्ञा का पालन करने में परशुराम को कोई व्यवधान नहीं आया क्योंकि उन को पता था कि मेरे पिता जी जहाँ मारने की शक्ति रखते हैं वहाँ जीवनदान देने की शक्ति भी रखते हैं लेकिन महाराज ! मैं तो इस स्थिति में नहीं हूँ इसलिए पिता की आज्ञा का मैं पालन नहीं कर सकता। वो तो ऋषि थे। वशिष्ठ जी ने दूसरा उदाहरण देते हुए कहा -नहीं, राजाओं में भी ऐसी प्रथा रही है। मैं तुम्हें एक राजकुमार का उदाहरण दे रहा हूँ -

तनय जजातिहि जौबनु दयऊ।
पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ॥

(रा० २/१७४-८)

ययाति के पुत्र पुरु ने अपने पिता की आज्ञा मान करके उन्हें युवावस्था दे दी थी लेकिन उनकी आज्ञा पालन करने के नाते न तो उन्हें कोई पाप लगा न उनकी अपकीर्ति हुई।

आप लोगों ने ययाति का नाम सुना होगा। चन्द्रवंश के प्रारम्भ में ही भारत में ययाति नाम के सम्राट हुए हैं। ययाति का विवाह दैवयोग से शुक्राचार्य की पुत्री से हो गया। शुक्राचार्य की पुत्री से विवाह कैसे हो गया ? क्षत्रीय कन्याएँ

सदैव ब्राह्मणों को दान दी जाती रही हैं लेकिन ब्राह्मण कन्या का विवाह क्षत्रीय से हो, ऐसा कोई उदाहरण नहीं है। केवल एक उदाहरण है जो मैं बता रहा हूँ और वो भी श्राप के कारण। शुक्राचार्य की लड़की थी देवयानी। बृहस्पति जो कि देवताओं के गुरु थे उनका पुत्र था कच। दैवासुर संग्राम में जितने असुर मारे गए सब को शुक्राचार्य जी ने जीवित कर लिया लेकिन देववर्ग के जो मारे गए वो जीवित नहीं हुए। देवताओं का बल क्षीण होने लगा। देवताओं ने अपने गुरु बृहस्पति से कहा कि गुरुदेव ! जो सामर्थ्य शुक्राचार्य में है वह सामर्थ्य आप में नहीं है ? उन्होंने कहा कि मेरे में वो सामर्थ्य नहीं है। कहा कि यदि नहीं है तो हम लोगों का कल्याण कैसे होगा ? कहा कि एक रास्ता है। मैं अपने पुत्र कच को शुक्राचार्य के यहाँ भेजता हूँ। शुक्राचार्य के यहाँ से वो विद्या ग्रहण करके आयेगा तो वो भी उनके जैसा सामर्थ्य वाला ही होगा। मजे की बात यह है कि शुक्राचार्य के पिता भृगु और बृहस्पति के पिता अंगिरा दोनों सगे भाई थे। एक देवताओं के गुरु बने और दूसरे दैत्यों के गुरु बने। बृहस्पति ने अपने पुत्र कच से कहा कि तुम शुक्राचार्य के पास जाओ, वे तुम्हारे ताया लगते हैं, उनके पास जाकर विद्या अध्ययन करो। जब कच उनके पास विद्या अध्ययन के लिए गया तो शुक्राचार्य जी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उसे अपना शिष्य बनाया और उसे पढ़ाने लगे। कुछ काल तक वहाँ साथ-साथ रहने से देवयानी जो शुक्राचार्य की पुत्री थी, उसके हृदय में वासना जागृत हो गई। उसने निश्चय किया कि मैं विवाह करूंगी तो इस लड़के से करूँगी। आखिर में जब कच विद्याध्ययन करके गुरु के आश्रम से विदा लेकर के चला तो देवयानी उसके पीछे चल पड़ी। उसने निर्देश दिया कि रुको। कच ने कहा कि क्या बात है ? कहा कि तुम्हें पता नहीं है कि मैंने निश्चय किया है कि मैं तुम्हारे साथ विवाह करूँगी। कच ने कहा - अरे, यह तो आश्चर्य की बात है। हमारा तुम्हारा विवाह तो दो कारणों से नहीं हो सकता। एक कारण तो यह है कि हम दोनों एक ही वंश के हैं और दूसरा तू मेरे गुरु की पुत्री है। गुरु की पुत्री के साथ विवाह कैसे हो सकता है ? यह तो अनर्थ हो जाएगा यदि ऐसा हुआ तो। देवयानी ने कहा कि मैंने निश्चय किया है कि यदि तुम मेरे से विवाह

नहीं करोगे तो मैं तुम्हें श्राप दूंगी जिससे तुम्हारी सारी पड़ी हुई विद्या नष्ट हो जाएगी। उसने कहा कि चाहे मेरी सारी विद्या अभी चली जाए लेकिन मैं ऐसा अनर्थ नहीं कर सकता। कच ने देवयानी के साथ विवाह नहीं किया और देवयानी ने उसे श्राप दे दिया जिससे उसकी सारी विद्या समाप्त हो गई। कच ने भी उसे श्राप दे दिया कि तूने अन्याय का पक्ष लेकर के जो मुझे श्राप दिया है इसके बदले में मैं भी तुझे श्राप देता हूँ कि कोई ब्राह्मण कुमार तुम्हें स्वीकार नहीं करेगा। देवयानी भी हतप्रद रह गई।

एक दिन देवयानी विश्वपर्वा की लड़की शर्मिष्ठा के साथ घूमने गई थी तो शर्मिष्ठा ने जान करके देवयानी को कुएं में डाल दिया और स्वयं चली आई। शुक्राचार्य जी इन्तज़ार करते रहे कि पुत्री नहीं आई, पता नहीं कहाँ रह गई। संयोगवश महाराज ययाति उसी जंगल में शिकार खेलने गए थे। जब वो अपने दल-बल के साथ कूप पर पानी पीने गए तो देखा कि वहाँ कोई स्त्री गिरी हुई है। उन्होंने रस्सी डाल करके उसको निकाला। अभी कुएँ से निकलने से कुछ दूरी पर रह गई थी तो राजा ने अपना दायाँ हाथ बड़ा कर उसका दाहिना हाथ पकड़ा और उसे बाहर निकाल लिया। उन्होंने पूछा कि देवी! तुम कौन हो, हम तुम्हें तुम्हारे पिता के घर भेज दें? उसने कहा - 'भले आदमी.मेरा दाहिना हाथ पकड़ने के पश्चात् अब तुम मुझे पिता के यहाँ कैसे भेजोगे? तुम जानते नहीं कि किसी स्त्री का दाहिना हाथ अपने दाहिने हाथ से नहीं पकड़ना चाहिए? कहा कि देवी! तुम हो कौन? उस ने कहा कि मैं शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी हूँ। राजा तो कांप गया कि यह तो ब्राह्मण की लड़की है, यदि इसके कथनानुसार मैं इसे स्वीकार भी कर लूं तो इसका बाप तो हमारा सर्वनाश कर देगा। उसने उससे बहुत क्षमा मांगी कि देवी मेरे से गलती हो गई है। उसने कहा - 'गलती नहीं हुई है, यह तो दैवी विधान था क्योंकि मैं शापित हूँ। एक ब्राह्मण कुमार ने मुझे श्राप दिया है कि कोई ब्राह्मण कुमार मुझे स्वीकार नहीं करेगा। दैवी विधान और देव की प्रेरणा से ही तूने मेरा दाहिना हाथ अपने हाथ में पकड़ा है इसलिए अब मैं तुम्हारे साथ ही रहूंगी। शुक्राचार्य ने इसे स्वीकार कर लिया और देवयानी का

विवाह हो गया। विवाह में देवयानी ने यह शर्त रखी कि यह जो शर्मिष्ठा असुर कन्या है, यह मेरी दासी होकर मेरे साथ चलेगी क्योंकि इसने हमें कुएँ में गिराया है। ययाति ने यह स्वीकार कर लिया लेकिन संयोग क्या हुआ कि ययाति से शर्मिष्ठा के भी दो पुत्र पैदा हुए जिसका पता देवयानी को नहीं था। उधर देवयानी से भी तीन पुत्र पैदा हुए।

शर्मिष्ठा के पुत्र जब बड़े हुए तो खेलते-२ उधर आ निकले। देवयानी ने देखा कि बच्चे बड़े प्यारे-प्यारे हैं, किसके हैं? इनकी मुखाकृति तो ऐसी लगती है जैसे मेरे बच्चों की हो और वहाँ पर यह बात खुल गई, ये बच्चे शर्मिष्ठा के हैं। देवयानी आग बबूला होकर पिता के यहाँ पहुँच गई, पिता जी! राजा ने हमारे साथ अन्याय किया है। पिता ने कहा कि तुम क्या चाहती हो? कहा कि राजा को दण्ड मिलना चाहिए। पिता ने कहा कि मैं अभी दण्ड देता हूँ। शुक्राचार्य ने कहा कि अरे दुष्ट! जिस पुरुषत्व के अहंकार में आकर तूने मेरी पुत्री के साथ अन्याय किया है, मैं तुझे श्राप देता हूँ कि तेरा पुरुषत्व ही नष्ट हो जाए। परिणाम यह हुआ कि ययाति राजा जो बलवान था, वीर था और जवान था श्राप से उसका तेज नष्ट हो गया, वह बूढ़ा हो गया। जब वह वृद्ध बन गया तो देवयानी रोने लगी कि यह आपने क्या कर दिया? पिता ने कहा कि तूने कहा था इसलिए मैंने श्राप दे दिया। देवयानी ने कहा कि आपने श्राप से मेरे पति को ही वृद्ध कर दिया। इस श्राप का कोई उपाय है? हाँ, उपाय है, इसके पांच पुत्रों में से यदि कोई अपनी जवानी इसे दे दे तो यह फिर युवा हो जाएगा और वह पुत्र बूढ़ा हो जाएगा। जब इसकी रुचि होगी तो ये दोनों आपस में अवस्था बदल भी लेंगे। कहा कि ठीक है।

सबसे बड़े पुत्र थे यदु जिसके वंश को यदुवंशी कहते हैं। आजकल उन्हें यादव कहते हैं, इसी कुल में भगवान् श्रीकृष्ण का आविर्भाव हुआ था। महाराज यदु देवयानी के बड़े पुत्र थे। यदु से कहा कि तुम अपनी युवावस्था पिता को दे दो। उन्होंने कहा कि यह पाप मैं नहीं कर सकता। मेरी युवावस्था ले करके इसका प्रयोग तो आप मेरी माँ के साथ करेंगे, अवस्था तो मेरी होगी इसलिए मैं

पाप का भागी बनूंगा। मैं यह काम नहीं कर सकता। यदु के छोटे भाई थे तुरवसु। तुरवसु से कहा कि भाई तू ही दे दे। उसने भी अस्वीकार कर दिया। तीसरे भाई थे द्रुहु। द्रुहु ने भी अस्वीकार कर दिया। तीनों देवयानी के पुत्रों ने अपनी युवावस्था देने से इन्कार कर दिया। शर्मिष्ठा के दो पुत्र हुए अणु और पुरु। अणु से राजा ने कहा कि तुम ही दे दो। अणु ने कहा कि जब मेरे बड़े भाई ही नहीं दे रहे तो मैं कैसे दे सकता हूँ। जब सब ने इन्कार कर दिया तो पांचवें पुत्र पुरु से पूछा कि तेरी क्या राय है ? उसने कहा - जैसी आपकी आज्ञा। पुरु ने अपने पिता को अपनी युवावस्था दे दी। युवावस्था प्राप्त करने के पश्चात् ययाति ने अपने चारों पुत्रों से कहा कि तुम लोग पिता की आज्ञा की उपेक्षा करने वाले हो इसलिए तुम लोगों को हमारे राज्य में रहने का अधिकार नहीं है। चारों पुत्रों को राज्य से निष्कासित कर दिया -

यदोऽस्तु यादवा जातास्तुर्वसोयवनाः स्मृताः ।

(महा० सम्भवपर्व ८५/३४)

यदु की सन्तान यादव हुई। तुरवसु की सन्तान यवन हुए जिन्होंने यूनान बसाया। अणु और द्रुहु ने अरब और सीरिया बसाया। ये चार राज्य इन चारों पुत्रों ने जाकर के पश्चिम में बसाए। महाभारत में इसका वर्णन है। ये सब चन्द्रवंशी क्षत्रीय थे जिन्होंने अपना साम्राज्य बसाया। पुरु गद्दी के उत्तराधिकारी बने। यहाँ पर विशिष्ठ जी ने भरत जी से कहा -

तनय नजातिहि जौबनु दयऊ ।

(रा० २/१७४-७)

ययाति के पुत्र पुरु ने अपने पिता की आज्ञा मानकर पिता को अपनी युवावस्था दे दी थी -

पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ ॥

(रा० २/१७४-८)

इससे न तो वह पाप का भागी हुआ और न उसकी अपकीर्ति हुई। कहा - तो उसको मिला क्या ? कहा -

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ॥

उसे स्वर्ग मिला और कीर्ति मिली। भरत जी ने कहा कि क्षमा करना गुरुदेव! न तो मुझे स्वर्ग चाहिए न कीर्ति चाहिए। उन्होंने कहा कि मैं तुझे समझा रहा हूँ-

बेद बिदित संमत सबही का ।
जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥

(रा० २/१७५-३)

वेद का यह सिद्धांत है कि पिता जिसको चाहे अपने राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर सकता है। तुम्हें पिता ने उत्तराधिकारी घोषित किया है। स्मृति क्या कहती है ? कहा -

करहु राज परिहरहु गलानी ।
मानहु मोर बचन हित जानी ॥

(रा० २/१७५-४)

मैं तुम्हारा गुरु हूँ, मैं जिम्मेदारी लेकर कहता हूँ कि तुम राज गद्दी पर बैठ जाओ, राज्य सम्भालो, तुम्हें कोई पाप नहीं लगने का। दुनिया में कोई ऐसा नहीं है जो तुम्हें अन्यायी घोषित करे।

सुनि सुखु लहब राम बैदेहीं ।
अनुचित कहब न पंडित केहीं ॥

(रा० २/१७५-५)

राम-सीता को जब पता चलेगा कि तुम राज्य सम्भाल लिए हो तो उनको प्रसन्नता होगी और दुनिया का कोई विद्वान इसे अनुचित नहीं कहेगा। वशिष्ठ जी कहते हैं कि यह मेरी घोषणा है। वेद कह रहा है, पिता कह गये हैं, माँ कह रही है और गुरु कह रहा है। भरत जी अब किससे पूछें कि मेरे लिए अब रास्ता बताओ। है कोई रास्ता ? नहीं। गुरुदेव ने कहा कि ठीक है कि तुम्हारी राम में आस्था है तो मैं तुझे एक छूट देता हूँ। वह छूट क्या है ? कहा-

सौंपेहु रानु राम के आएँ ।

सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ॥

(रा० २/१७५-८)

राम जब चौदह वर्ष के पश्चात् लौट कर आ जाएं तो तुम उनको राज्य लौटा देना और प्रेम से सेवा करना। अभी तक तो गुरु की आज्ञा और शास्त्र की आज्ञा में मन्त्री कुछ नहीं बोले लेकिन जब गुरु ने यह प्रस्ताव रख दिया तो मन्त्री उठ कर खड़े हो गए। मन्त्री सुमन्त राजनीति के ज्ञाता हैं। यह मन्त्री का दायित्व है कि राज्य में यदि कहीं कोई नीति विरुद्ध बात हो तो उसका प्रतिकार करे। सुमन्त ने कहा कि देखिए जहाँ तक तो राज्य सम्भालने की बात है उसमें तो मैं कुछ नहीं बोलूंगा। गुरु की आज्ञा का अवश्य पालन करना चाहिए, यह तो मैं कहूँगा लेकिन यह जो गुरु जी कह रहे हैं कि चौदह वर्ष बाद राम आवें तो राज्य उन्हें लौटा देना, इसके विषय में मुझे एतराज है -

रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि ॥

(रा० २/१७५)

राम जब आएंगे उस समय जैसा होगा वैसा किया जाएगा, अभी तो इसमें वचन नहीं दिया जा सकता कि राम के आने पर राज्य लौटा ही दिया जाएगा। जब सुमन्त ने यह घोषणा की तो सब मौन हो गए। भरत जी देखने लगे कि शायद माँ कौशल्या इस दु:खद स्थिति में हमारी सहायता करने के लिए तैयार हो जाएँ। भरज जी ने माँ कौशल्या की तरफ देखा कि माँ तेरी क्या आज्ञा है ?

कौसल्या धरि धीरजु कहई ।
पूत पथ्य गुर आयसु अहई ॥

(रा० २/१७६-१)

धैर्य धारण करके कौशल्या कहती है कि मेरे पुत्र! गुरु की आज्ञा हमेशा पथ्य हुआ करती है। गुरु की आज्ञा कुपथ्य कैसे होगी ? गुरु कभी शिष्य को ऐसी आज्ञा नहीं देगा जिससे उसका अहित हो इसलिए -

सो आदरिअ करिअ हित मानी ।
तजिअ बिषादु काल गति जानी ॥

गुरु की आज्ञा का आदर करना चाहिए। आप ज़रा सोचिए! अपनी माता, विमाता कौशल्या, पिता दशरथ, गुरु वशिष्ठ, अयोध्या की सारी प्रजा, मन्त्री, महामन्त्री, सुमन्त, सबने मोहर लगा दी कि भरत राज्य अवश्य करें। कोई विकल्प नहीं छूटा है भरत के सामने। ऐसी विकट स्थिति में यदि भरत राज्य सम्भाल लेते तो क्या आप कहते कि उन्होंने अन्याय किया ? नहीं, कोई अन्याय नहीं किया। तुलसीदास जी के शब्दों में

कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ।
पुरुष परिखिअहिं समय सुभाएँ॥

(रा० २/२८३-६)

सोना कसौटी पर कसा जाता है, मणि की जानकारी पारिख से अर्थात् उसके जानकार से होती है। मुनष्य की यथार्थ स्थिति का पता तब चलता है जब उस पर विकट स्थिति आ जाए। अब भरत के सामने इससे विकट स्थिति और क्या हो सकती है ? एक तरफ माता है, पिता है, गुरु है, वेद है, स्मृति है, प्रजा है और मन्त्री हैं, सबका मत एक है कि तुम राज्य करो। इसके विपरीत तो कोई सोच ही नहीं सकता। सबके हृदय में प्रश्न है कि यदि भरत राज्य नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? आखिर इसका विकल्प क्या है ? किसी के सामने कोई विकल्प नहीं है। भरत सब की बात सुन लेते हैं, सुनने के पश्चात् उठ कर खड़े होकर सबको प्रणाम करते हैं। प्रणाम करते हुए एक बात कहते हैं कि मैंने गुरु, माता-पिता, बन्धु सबकी बात सुन ली है और इस सत्य से मैं परिचित हूं -

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी।
सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू।
धरमु जाइ सिर पातक भारू॥

(रा० २/१७७-३,४)

उन्होंने कहा कि मैंने धर्मशास्त्र गुरुदेव के चरणों में बैठ कर पढ़ा है, अपने भईया राम से समझा है। भगवान् राम का नित्य का नियम था -

बेद पुरान सुनहिं मन लाई।
आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥

(रा० १/२०५-६)

जो बात छोटे भाईयों को समझ में नहीं आती थी भगवान् राम उसको स्वयं समझा कर बताते थे-

बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं।
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ॥

(रा० ७/२६-२)

भगवान् का नित्य का नियम था कि सायंकाल के चार बजे के बाद बैठ कर वेद शास्त्र की कथा सुनते थे। सुन करके बाद में भाईयों को समझाते थे। भरत जी कहते हैं कि मैं जानता हूँ कि माता- पिता, गुरु और प्रभु, इन चारों की बात बिना विचार किए सिर पर धारण करके अनुकरण करनी चाहिए। यह भी मैं जानता हूँ कि इन चारों की बात पर यदि विचार करें कि यह उचित है या अनुचित तो धर्म नष्ट हो जाता है और बहुत बड़ा पाप लगता है। यह थी तत्कालीन मान्यता जिसकी बात भरत कह रहे हैं। भरत जी कहते हैं कि यद्यपि मैं इसे अच्छी प्रकार से जानता हूँ फिर भी मुझे हृदय में संतोष नहीं हो रहा। स्मृति शास्त्र का सिद्धान्त है -

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षात् धर्मस्य लक्षणम् ॥

(मनु स्मृति २/१२)

धर्म के निर्णय में चार बातें अवश्य हैं - वेद, स्मृति, सदाचार और चौथा है स्वस्य च प्रियमात्मनः। गुरुदेव जो कह रहे हैं, माता-पिता जो कह रहे हैं सबकी बात धर्मसम्मत है, वेद सम्मत है, स्मृति सम्मत है और सदाचार माने आदर सम्मत है। ये तीनों बातें सत्य हैं, इसमें संदेह नहीं है लेकिन एक बात जो धर्म के निर्णय में आखिर में कही गई है 'स्वस्य च प्रियमात्मनः' यदि तुम्हारी आत्मा उसे स्वीकार नहीं करती तो तुम्हारे लिए वह धर्म नहीं होगा, अधर्म हो जाएगा। तुम

यह देखो तुम्हारी आत्मा उसे स्वीकार करती है ? यदि नहीं करती है तो नहीं करना चाहिए। यह देखो उसके पालन करने से तुम्हारा हित होता है या समाज का ? यदि समाज का अहित हो रहा है और तुम्हारा हित हो रहा है तो उसका त्याग कर दो, वह अधर्म है। पवित्रात्मा कभी उसे स्वीकार नहीं करेगी। भरत जी कहते हैं कि यह मैं जानता हूँ लेकिन मेरे हृदय को संतोष नहीं है। वेद कहता हो, शास्त्र कहता हो, दुनिया कहती हो लेकिन मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं कर रही, मेरी आत्मा नहीं मान रही है इसलिए मैं सबसे क्षमा मांगता हूँ। बड़ी विनम्रता के साथ सबकी बातों का उन्होंने एक ही उत्तर दिया -

जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें ।
तदपि होत परितोषु न जीकें ॥

(रा० २/१७७-६)

आप की आज्ञा का पालन करने में मुझे संतोष नहीं हो रहा। इस प्रकार उन्होंने गुरु की आज्ञा का विनम्रता से उलघंन किया। आखिर तुम यह नहीं करोगे तो फिर क्या करोगे ? भरत जी ने कहा कि मैं जो करूंगा उसके लिए मैं आप लोगों से ही आज्ञा मांगूगा। क्या करेंगे भरत जी ? उन्होंने कहा कि यह तो कल बताऊँगा।

हरि ॐ तत्सत्

(६)

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ।

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक मंगल कामना। आज मेरे इस ज्ञान सत्र का छठा दिन है। आप लोग कई दिनों से श्रीराम चरित्रमानस के महान् आदर्श पुरुष महात्मा भरत के जीवन चरित्र से सम्बन्धित बहुत ही जीवनोपयोगी ज्ञान ग्रहण कर रहे हैं। कल मैंने एक बात आप लोगों को बताई थी कि दुनिया में तीन प्रकार की विचारधाराएँ इस शती के प्रारम्भ में सक्रिय रही हैं। भौतिकवाद की भित्ति पर जिस वैज्ञानिक विचारधारा को खड़ा किया गया उसकी मान्यता के आधार पर मानवीय समाज के पुन: संरचना की एक परीक्षण प्रक्रिया प्रारम्भ की गई। आप लोग जानते हैं कि भौतिकवाद की यह मान्यता है कि सृष्टि के मूल में कोई चेतन वा चेतना ऐसी वस्तु नहीं है। विशुद्ध भौतिक पदार्थों के संघात के परिणाम में चेतना का आविर्भाव हो जाता है और जीवन का प्रारम्भ चेतना युक्त जड़ पदार्थों से एक सैल के प्राणी अमीबा के रूप में होता है और वही क्रमश: विकसित होता हुआ अनन्त सेलों से युक्त मनुष्य रूप में परिणित होता है इसलिए मनुष्य स्वयं में एक इकाई है और मनुष्यों के समूह का नाम समाज है। समाज जब एक सीमा विशेष में आबद्ध हो जाता है; अपने में भाषा, संस्कार, धर्म और इसी प्रकार के तत्त्वों को विकसित करता है तो उसको राष्ट्र वा नेशन का नाम दे दिया जाता है लेकिन मूल उसका है व्यक्ति और यह सब कुछ व्यक्ति के लिए ही होता है। व्यक्ति यदि अपनी क्षति देखते हुए

अपने लाभ, सुख और शांति के लिए अन्य की उपेक्षा करता है तो वह अन्याय नहीं है न्याय है क्योंकि वह यथार्थतया विवेक सम्मत, बुद्धि सम्मत है, ऐसा व्यक्तिवादी समाज शास्त्रियों का मन्तव्य रहा है।

व्यक्तिवाद को जन्म देने वाली यह भौतिकवादी विचारधारा है और इसके साथ-साथ एक दूसरी विचारधारा है जो मानव समाज में अपना प्रभुत्व जमाए हुए है, वह है ईश्वरवादी विचारधारा। ईश्वरवादी विचारधारा का मन्तव्य है कि इस सृष्टि को ईश्वर ने बहुत ही प्रयत्न से छः दिन में बनाया है। छः दिन में सृष्टि को बनाकर जब वह थक गया तो सातवें दिन उसने विश्राम किया। ईश्वरवादी कहते हैं कि यदि तुम ईश्वर में विश्वास करोगे तो मृत्यु के पश्चात् उसके राज्य में तुम्हें रहने का स्थान मिलेगा। उनके मतानुसार समस्त प्राणी ईश्वर में विश्वास करते हैं और ईश्वर के बनाए हुए नियमानुसार चलते हैं। कीड़ी से लेकर हाथी तक इन सबके जीवन का क्रम ईश्वर के निर्देशानुसार ही चलता है। इनका आहार निश्चित है, विहार निश्चित है, भाषा निश्चित है, सब कुछ निश्चित है। ये सब ईश्वर की आज्ञा में चलने वाले प्राणी हैं। अब ईश्वर ने जो छटे दिन मुनष्य बनाया तो उसे स्वतन्त्रता दे दी कि यदि वह ईश्वर में विश्वास करता हुआ उसके निर्देशानुसार जीवन बिताता है तो मृत्यु के पश्चात् वह ईश्वर के राज्य में प्रवेश पा जायेगा और आनन्द से रहेगा। शैतान जब मनुष्य को बहका देता है तो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा का पालन नहीं करता और अपनी मनमानी करने लगता है। उसके परिणामस्वरूप वह ईश्वर के क्रोध का भाजन बनता है और वह उसे उठाकर दोजक (नर्क) में डाल देता है - यह ईश्वरवादी विचारधारा का मन्तव्य है।

ये दो विचारधाराएँ कई शताब्दियों तक पश्चिम में टकराती रहीं और पश्चिम तक ही सीमित रहीं। कुछ उत्साही लोग अपनी इस विचारधारा को लेकर के पूर्व की तरफ भी बड़े। यातायात का इतना सुगम साधन नहीं था इसलिए पूर्व में इन विचारधाराओं को अधिक प्रश्रय नहीं मिला। अब तो दो सदियां होने आई हैं, जैसे-जैसे यातायात की सुविधा बढ़ने लगी है वैसे-वैसे

ईश्वरवादी विचारधारा भी फैल रही है। भौतिकवादी और ईश्वरवादी जब पूर्व में आए तो उनको एक तीसरी विचारधारा मिल गई। भारत की विचारधारा जब उन्होंने पढ़ी तो देखा कि यह न तो भौतिक विचारधारा से और न ईश्वरवादी विचारधारा से मिलती है। भारतीय दर्शन, भारतीय जीवन विज्ञान, भारतीय जीवन पद्धति यह स्वीकार नहीं करती कि ईश्वर ने सृष्टि को बनाया है और न तो यह ही स्वीकार किया है कि इस सृष्टि के मूल में एक जड़ तत्त्व है, उसी से विकसित होते हुए जीवन का प्रकाश आया है। भारतीय मनीषा ने ना तो ईश्वरवाद को स्वीकार किया और न भौतिकवाद को। इसका यह अर्थ नहीं है कि भारतीय मनीषा ने इन दोनों वादों को नहीं जाना। भारत में कुछ ऐसे दार्शनिक हुए हैं जिन्होंने इन मतों का अनुसंधान करके विश्लेषनात्मक प्रक्रिया द्वारा इनका निराकरण किया है। भारत में भी कुछ ऐसे मत रहे हैं जिनको मैं ईश्वरवादी और भौतिकवादी कह सकता हूँ लेकिन उनका भौतिकवाद और ईश्वरवाद पश्चिम के भौतिकवादी और ईश्वरवादियों से भिन्न रहा है। वह भी मैं थोड़ा सा आपको समझा दूँ।

भारत में बौद्धमत का जो उदय हुआ उसमे ईश्वरवाद के लिए स्थान नहीं था। उनकी भी यही मान्यता रही कि यह सारी सृष्टि एक जड़ पदार्थ से आविर्भूत हुई। यह भगवान् बुद्ध ने नहीं कहा बल्कि बुद्ध के शरीरान्त के ३०० वर्ष बाद बुद्ध के नाम पर भारत में एक धर्म चलाया गया जिसकी यह मान्यता थी कि बुद्ध सदैव ईश्वर के विषय में मौन धारण करते थे। पूछने पर कह देते थे कि यह तो अति प्रश्न है इसलिए यह निश्चय हुआ कि बुद्ध ईश्वर और उसकी सत्ता को नहीं मानते थे। उन्होंने जो जीवन की प्रक्रियाएँ समझाई हैं उनके अनुसार बुद्ध ईश्ववादी नहीं बल्कि भौतिकवादी थे। कई बौद्ध विद्वानों ने इस पर इस प्रकार की मान्यता लिखी है और भी भारत में कई सम्प्रदाय हैं जो ईश्वर को नहीं मानते। जैन सम्प्रदाय में भी ईश्वर की प्रतिष्ठा नहीं है। वहाँ भी ईश्वर के लिए स्थान नहीं है। वहाँ ईश्वर जगत् का रचियता नहीं है। वहाँ दो तत्त्व हैं एक जड़ है एक चेतन है। एक को जीव कहते हैं और दूसरा पुदगल है लेकिन वह

भौतिकवादी दर्शन नहीं है क्योंकि वहां जड़ की अपेक्षा चेतन की स्वतन्त्र सत्ता है। बुद्ध धर्म में चेतन की अलग सत्ता नहीं है, दोनों में इतना अन्तर है। जैन दर्शन सांख्य दर्शन के लगभग निकट है। वहाँ पर चेतन की भी स्वीकृति है और जड़ की भी स्वीकृति है। इनके सम्मिश्रण से दोष आता है। तप के द्वारा यदि चेतन जड़ से मुक्त हो जाए तो कैवल्यपद को प्राप्त करके कृतकृत्य हो सकता है लेकिन बुद्ध मत में ऐसा नहीं है। बुद्ध मत में चेतन स्वतन्त्र है ही नहीं। बुद्धमत का जो निर्वाण है वह है आत्मा की मृत्यु। बुद्धमत में आत्मा नित्य तत्त्व नहीं है इसलिए उसको जड़वादी भौतिकवादी मत कहते हैं। भारत में कई ऐसे विचारक हुए हैं जिन्होंने ईश्वर की महत्ता को स्वीकार किया है और उन्होंने कहा है कि ईश्वर ही सृष्टि का रचियता है। पश्चिम के ईश्वरवादियों ने इस प्रकार से तो नहीं कहा लेकिन उन्होंने माना है कि ईश्वर सृष्टि का रचियता है। ईश्वर सृष्टि रचता है। क्यों रचता है ? तो उन्होंने ईश्वर, जीव और जगत को अलग-अलग स्वीकार किया और कहा कि जीवों की दुर्गति को देख करके ईश्वर को दया आई और वो जीवों के उद्धार के साधन प्रदान करने हेतु सृष्टि की रचना करता है। ईश्वरवादियों की मान्यता है कि जीव अलग है, ईश्वर अलग है और जिससे वह सृष्टि बनाता है वह प्रकृति अलग है। भारतीय दर्शन का जो विश्लेषणात्मक स्वरूप रहा है जिसको हम ब्रह्मविद्या शब्द से सम्बोधित करते हैं, उसमें इस प्रकार की मान्यताओं के लिए स्थान नहीं है। वैदिक साहित्य का अनुशीलन करके मैं आपको बड़े विश्वास के साथ बता रहा हूँ कि उसमें इस प्रकार की मान्यता के लिए स्थान नहीं है। भारतीय मनीषा ने बताया कि सृष्टि ईश्वर की रचना नहीं है। फिर क्या है? जो अनन्त सत्य है उसी की अभिव्यक्ति यह विश्व है, यह विश्व उसकी रचना नहीं है।

एक बार एक पादरी से मेरी चर्चा हो रही थी तो उसने मेरे से पूछा कि आप ईश्वर को रचियता क्यों नहीं मानते ? मैंने उससे कहा कि ईश्वर रचियता हो ही नहीं सकता। क्यों नहीं हो सकता ? हमने कहा कि ईश्वर को रचियता मानने का अर्थ होता है कि Creator must be separate from creation . If you believe that God is omnicient, omnipresent, omnipotent then how He can be a creator ?

How He can be separate from that creation ? यदि तुम यह मानते हो कि ईश्वर सर्वज्ञ है, सर्वत्र है और सर्वसमर्थ है तो जो सर्वज्ञ है वह अपनी रचना से अलग कैसे हो सकता है ? If you are believing that God is creator it means you are limitising God and His own creation too. कहने का अभिप्राय कि कोई भी रचियता अपनी रचना को अपने से अलग होकर ही रचता है। जहाँ उसकी रचना होती है वहाँ वह नहीं होता और जहाँ वह होता है वहाँ उसकी रचना नहीं होती। क्या ईश्वर के विषय में ऐसी कल्पना कर सकते हो ? कल्पना तो नहीं कर सकते। यदि तुम यह स्वीकार कर लो कि ईश्वर एकदेशीय है फिर तो उसको तुम रचियता मान लो और यदि यह कहो कि ईश्वर सर्वदेशीय है तो वह रचियता नहीं बन सकता। हमारे यहाँ वैदिक विज्ञान में बताया गया है-

पुरुषऽएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।

(पुरुष सू० २)

जो पहले था, जो है और जो होगा, यह सब एक पुरुष की अभिव्यक्ति है। पुरुष स्वयं में विराट रूप में परिणित हुआ।

ततो व्विराडजायत व्विराजोऽअधि पूरुषः ।

(पुरुष सू० ५)

यह ऋग्वेद का मन्त्र है।

मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि भारतीय मनीषा ने इस सत्य का अनुसंधान किया तथा यह घोषणा की कि यह विश्व परम सत्य की अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति माने Manifestation or projection not creation. कहा वेद में तो आया है कि -

स इमाँल्लोकानसृजत ।

(ऐतरेय० १/२)

उसने लोकों की रचना की। हमने कहा कि भले आदमी असृजत शब्द का अर्थ क्या होता है जानते हो ? सृज धातु सृज उदगीरने अर्थ में प्रयुक्त हुई है। उदगीरन माने होता है अभिव्यक्त करना या प्रकट करना। अपने से प्रकट करना होता है

अपने से बनाना नहीं होता। यह ब्रह्माण्ड परमात्मा की अभिव्यक्ति है। गीता में हम पढ़ते हैं जिस समय अर्जुन को भगवान् ने समझाया कि यह विश्व परमात्मा की अभिव्यक्ति है तो अर्जुन ने कहा कि यह दिखा दो। ग्यारहवें अध्याय में भगवान् ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि देकर के दिखाया कि इस सृष्टि का कोई ऐसा अंश नहीं है जो परमात्मा के अंग में समाहित न हो। यह सारा विश्व परमात्मा का स्वरूप है -

जग देव हरि हरि रेव जगत जग ते हरि तो नहिं भिन्न तनु।
इति यस्य मति परमार्थ गति स नरो भवसागर मुत्तरति ॥

इसलिए हमारे यहाँ व्यक्तिवाद के लिए स्थान नहीं है। दुनिया में व्यक्तिवाद को जन्म देने वाला भौतिकवाद है और राजतन्त्र को जन्म देने वाला ईश्वरवाद है। दुनिया में एक आत्मभाव को अभिव्यक्त करने वाला ब्रह्मवाद है जिसे अद्वैतवाद कहते हैं, जिसमें कहीं भी व्यक्तिवाद के लिए स्थान नहीं है। वहां पर व्यक्ति स्वयं में इकाई नहीं है। व्यक्ति तो उस अनन्त की अभिव्यक्ति मात्र है।

वर्तमान का वैज्ञानिक इसी दिशा में चल रहा है। वैज्ञानिकों ने एक मानबिन्दु बना रखा है और जाना है कि कारण सदैव असीम होना चाहिए। Finite can't be the cause, that is effect. जो सीमित है, जो परिवर्तनशील है, वह स्वयं में कारण नहीं हो सकता, वह कार्य है। कारण तो एक होगा, नित्य होगा और शाश्वत होगा। अब वे शाश्वत कारण की तरफ आगे बढ़ रहे हैं। आप लोगों को इतना तो पता होगा कि आज से पांच वर्ष पहले जो वैज्ञानिकों की मान्यता थी वह आज नहीं है, बहुत परिवर्तन आ गया और आता ही जा रहा है। अब मैंने देखा है कि अमेरिका जैसे देशों में अनेकों यूनीवर्सिटियों में अलग Faculty बनी है। They are searching about root cause of life. जीवन का मूल कारण क्या है ?

आपको एक और आश्चर्य की बात सुनाता हूँ। अमेरिका से एक पत्रिका निकलती है जो सांईस से सम्बन्धित नए-नए अनुसंधानों को दुनिया में प्रचारित करती है। केलीफोर्निया यूनीवर्सिटी में बहुत वर्षों से एक अनुसंधान चल रहा है कि जब आदमी मरता है तो उसमें से क्या निकल जाता है जिससे हम

उसे मृत मानते हैं ? अभी दो मास पूर्व मेरे पास वह पत्रिका आई, उसमें बताया कि छः वर्षों से वे अनुसंधान कर रहे थे और अनेकों प्रकार के ऐसे मृत शरीरों का उन्होंने अध्ययन किया और उससे निर्णय निकाला कि बच्चा मरा तब भी और बूढ़ा मरा तब भी मरने से एक सैकिण्ड पहले और मरने के एक सैकिण्ड बाद जब उन्होंने उसका वज़न किया तो १९ ग्राम वज़न का कोई तत्त्व है जो निकलता है। यह आश्चर्य की बात है। अब वो १९ ग्राम क्या है, उसकी खोज कर रहे थे। सौभाग्य से उन्होंने इस पत्रिका में लिखा है कि उन्होंने उस १९ ग्राम वस्तु का चित्र ले लिया है। अमेरिका में Photography आगे बड़ी हुई है। अब वे आपके शरीर के औरा को जिसे आभा कहते हैं, का Photo ले लेते हैं। यह तो आप जानते हो कि प्रत्येक व्यक्ति के शरीर से एक विद्युत तरंग निकलती है और वह विद्युत तंरग उसके शरीर की आकृति में ऐसे गोले में धूमती है। उसको हमारे यहां आभा मण्डल कहते हैं। वे उस आभामण्डल का चित्र लेते हैं। इतना सूक्ष्मग्राही यन्त्र उनके पास है कि वे जब चित्र लेते हैं तो व्यक्ति के आभा मण्डल का चित्र उसमें आ जाता है। वो काला है, सफेद है, पीला है, नीला है, हरा है, लाल है, सातों रंगों में किस रंग की आभा है उसकी, इससे वे उसके अन्तर की स्थिति की Judgement करते हैं क्योंकि विद्युत तरंग तो वैसी होगी जैसा व्यक्ति सोचता है। यदि आपकी सोच अन्दर से खराब है तो आपकी आभा कभी सुन्दर नहीं होगी। वो विकृत भी होगी, काली होगी, मटमैली होगी तथा प्रकाशयुक्त नहीं होगी। एक पुस्तक है जिसमें ये सारे चित्र दिए गए हैं। एक व्यक्ति का accident हो गया था, वो जब मरने लगा तो पहले से alert होकर वहां कैमरा लगा दिया जिससे जाने वाले तत्त्व का चित्र लिया जा सके। उन्होंने उस पत्रिका में दिया है कि जब वो लड़का मरा तो मरते समय अंगूठे का जो पोर है उसके बराबर शरीर में से इतनी बड़ी कोई चीज़ निकली जो स्थूल नहीं सूक्ष्म थी और निकलने के पश्चात् वह Space में आई तो एकाएक उसकी वही आकृति बन गई जो उस मृतक शरीर की थी। थोड़ी देर बाद वह लापता हो गई। अब वो कहते हैं कि जो हिन्दू शास्त्र कहता है -

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।

(कठ० २/१-१२)

अंगुष्ठ के बराबर वाला पुरुष शरीर के अन्दर निवास करता है और मरने के बाद -

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

(गीता १५/१०,७)

इस शरीर को छोड़ कर आत्मा जब जाती है तो वह लिंग शरीर में होती है, अंगुष्ठ मात्र होती है और मन सहित पांच इन्द्रियों के साथ निकलती है। उसे बाहर निकलते हुए सब नहीं देख सकते केवल ज्ञान दृष्टि वाले देख सकते हैं। यही वह आत्मा है जिसे हिन्दू शास्त्र कहता था और वह बिल्कुल सत्य है। अभी-२ यह खोज हुई है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि पश्चिम के लोग जिस अनुसंधान में लगे हुए हैं वे धीरे-धीरे वहीं पहुंच रहे हैं जहाँ कि हम अपनी साधना से पहुँचे हैं। कभी-कभी जो हमारे पास वैज्ञानिक आते हैं उनसे मैं मजाक में कहता हूँ कि भई देख जो तुम्हारा यन्त्र है That became a great barrier between truth and your intellect. If you want to realise that ultimate truth you must try to remove that barrier. Then you can see that face to face through yoga . I am not using any kind of Instrument but realizing that ultimate truth. If you want to realize that ultimate truth without any instrument, without any media then you must adopt this path. आपकी बुद्धि और आपके उस लक्ष्य के बीच में जो यन्त्र है वो कुछ तो अपना महत्त्व रखेगा। उस सत्य को ज्यों का त्यों जानना हो तो उस यन्त्र को हटा दो। अपने अन्तर की दृष्टि से जिसे भगवान् दिव्य दृष्टि कहते हैं, से देखो। वह दिव्य दृष्टि कौन सी है ,जानते हो ? उस दिव्य दृष्टि के बारे में महर्षि पतंजलि ने लिखा है -

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ।

निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ।

(यो० सू० १/४८,४७)

वह ऋतम्भरा नाम की प्रज्ञा है। 'ऋतं सत्यं भरति इति ऋतम्भरा' उस प्रज्ञा के द्वारा यह सत्य प्रत्यक्ष देखा जाता है। उस बुद्धि के प्रकाश में बिल्कुल ऐसे देखा जाता है जैसे हम आप सबको देखते हैं, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि यह भारत का अध्यात्म विज्ञान है। अब मानव समाज के लिए एक बड़ी कठिनाई है। वो तीन मान्यताओं में बंधा हुआ है। एक तो ईश्ववादी मान्यता है। इस्लाम, इसाई, यहूदी, ये सब ईश्वरवादी मान्यता में बंधे हुए हैं। यह तुम्हारा पहला और आखिरी जीवन है क्योंकि वहाँ पुनर्जन्म के लिए स्थान नहीं है। ईश्वर ने तुम्हें बनाया है यदि तुम ईश्वर में विश्वास करोगे तो जन्नत में जाओगे। यदि विश्वास नहीं करोगे तो जहन्नुम में जाओगे। अब यह तुम्हारा जन्नत और जहन्नुम तो ईश्वर के अधीन हो गया। दूसरी भौतिकवादी विचारधारा है। यह तुम क्यों जन्नत और जहन्नुम में विश्वास करते हो, यहीं जन्नत है और यहीं जहन्नुम है। यदि तुम्हें सुख मिला तो जन्नत मिल गया और यदि दुःख मिला तो जहन्नुम मिल गया। इसलिए तुम अपने सुखी होने के लिए सब कुछ करो। दुनिया को लूटना है ज़रूर लूटो। दुनिया को इक्टठा करना है ज़रूर करो यानी Process of acumulation is the result of Individualism. यह आप जानते हैं कि पूंजीवाद जो आया यह व्यक्तिवाद से आया। भारतीय दर्शन कहता है कि यह व्यक्तिवाद अज्ञान का परिणाम है। तुम किसी कार्य को इसलिए मत करो कि यह तुम्हारे लिए सुखद है। तुम किसी कार्य को इसलिए मत करो कि यह तुम्हारे परिवार के लिए सुखद है। किसी काम को करते समय दस बार सोचो, अपने विवेक बुद्धि के प्रकाश में देखो कि यह क्या लोक हित के लिए कल्याणकारी है ? यदि लोक हित में कल्याणकारी है तो अवश्य उसका अनुकरण करो। यदि लोकहित में व्यवधान उपस्थित करने वाला है तो दुनिया के बड़े से बड़े लोग तुम्हें कहते रहें तुरन्त उसको अस्वीकार कर दो। यह सीख हमें रामचरितमानस की इस घटना से मिलती है। इतनी बात आपको इस लिए बता

दिया कि आप लोग उस दर्शन शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में भरत के उस उत्तम चरित्र को देखिए।

महात्मा भरत के सामने कोई सामान्य समस्या नहीं। माँ कह रही है कि तुम राज्य करो, मन्त्री कह रहा है कि तुम राज्य करो। माता कौशल्या राम की माँ कह रही है कि भरत -

बन रघुपति सुरपुर नरनाहू।
तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा।
तुम्हही सुत सब कहँ अवलम्बा॥
लखि बिधि बाम कालु कठिनाई।
धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥

(रा० २/१७६-३,४,५)

माता कौशल्या भरत को समझा रही है कि यदि तुम राज्य नहीं सम्भालोगे तो क्या करोगे ? राम लक्ष्मण और सीता के साथ वन में हैं, महाराज दशरथ की मृत्यु हो गई है और तुम जानते हो कि कोई भी राज्य बिना राजा के रह नहीं सकता। यदि तुम राज्य नहीं सम्भालोगे तो राज्य सम्भालेगा कौन ?

परिजन प्रजा सचिव सब अंबा।
तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा॥

(रा० १७६/३)

जितनी तुम्हारी माताएँ हैं, जितना तुम्हारा परिवार है, जितनी तुम्हारी प्रजा है, इन सबके तुम ही एक अवलम्बन हो। इस समय जो कुछ हुआ यह सब भाग्य की प्रतिकूलता के कारण हुआ -

लखि बिधि बाम कालु कठिनाई।

काल की कठिनता और विधाता की प्रतिकूलता समझ करके तुम धैर्य धारण करो। माता बलिहारी जाती है -

सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू।

प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू ॥

(रा० २/१७६-६)

गुरु की आज्ञा को तुम शिरोधार्य कर लो। प्रजा का पालन करो और सब के दुःख दूर कर दो वत्स। आप जरा सोचिए यदि इतने बड़े धर्म संकट में पड़कर भरत सिर नीचा कर लेते कि अच्छा भई जैसी सबकी राय। यदि भरत राज्य स्वीकार कर लेते तो क्या रामचरितमानस का यही स्वरूप होता ? नहीं, लेकिन सिद्धान्त सिद्धान्त होता है। धर्म धर्म होता है। धर्म की परिभाषा जानने वाले जानते हैं कि -

धर्मे एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।

(मनुस्मृति ८/१५)

यह सिद्धान्त है। मारा हुआ धर्म उस व्यक्ति को मार डालता है और अभिरक्षित धर्म व्यक्ति की रक्षा करता है इसलिए धर्म से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। भरत के सामने इस समय एक तरफ धर्म है और दूसरी तरफ गुरु, पिता, माता, परिजन सबकी बात है। भरत विवेकी हैं, बुद्धिमान हैं।

एक बात और मेरी याद रखो। मेरे विचार से धर्म का आधार भावना नहीं बन सकती, धर्म का आधार सुबोध है, विवेक है और विशुद्ध बुद्धि है। सांख्य शास्त्र में बताया गया है कि धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य, ये चारों विशुद्ध बुद्धि के प्रकाश हैं। जहाँ विशुद्ध बुद्धि होगी वहीं धर्म होगा। जहाँ अशुद्ध बुद्धि हुई वहीं आप धर्म के नाम पर अधर्म अपना लेंगे। आप देखिए महाभारत काल में, धर्म के नाम पर अधर्म को पकड़ने वाले कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य, गुरु कृपाचार्य ऐसे महापुरुषों ने धर्म के नाम पर अधर्म को पकड़ रखा है। इसलिए भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि दुर्योधन से पूर्व ये वध्य हैं। इनका वध पहले होना चाहिए। इनके रहते तू दुर्योधन का वध नहीं कर सकता। ये उसके रक्षक हैं। ये रक्षा किसके नाम पर कर रहे हैं? धर्म के नाम पर। धर्म के नाम पर अधर्म को ग्रहण करने वाले सदैव मूर्ख लोग ही नहीं हुआ करते, कभी-कभी बड़े ज्ञानी लोग भी धर्म संकट में पड़ जाते हैं

और यह निर्णय नहीं कर पाते कि सही धर्म क्या है। भरत के सामने ऐसी ही स्थिति है। उनको निर्णय करना है कि सही धर्म क्या है। तुलसीदास जी लिखते हैं -

गुर के बचन सचिव अभिनंदनु ।

गुरु की आज्ञा और मंत्रियों द्वारा उसका समर्थन-

सुने भरत हिय हित जनु चंदनु ॥

(रा० २/१७६-७)

उन की बात को भरत ने सुना। सुनने में बातें इतनी अच्छी लगीं मानो उनके जलते हुए हृदय पर चन्दन का कोई लेप कर रहा हो। जले हुए पर चन्दन लगाएं तो ठण्डा लगता है लेकिन -

सुनी बहोरि मातु मृदु बानी ।

बाद में उन्होंने माता कौशल्या की बात सुनी, बड़ी पवित्र वाणी है -

सील सनेह सरल रस सानी ॥

(रा० २/ १७६-८)

जो शील, स्नेह और सरल रस से सनी हुई वाणी है। भरत ने गुरु की बात सुनी, मन्त्री की बात सुनी, माता कौशल्या की बात सुनी, इनकी बात सुनकर भरत जी संकट में पड़ गए। तुलसीदास जी लिखते हैं कि भरत का विवेक इतना प्रखर है कि उसके सामने वशिष्ठ जी भी सर झुका देते हैं और भगवान् राम भी भरी सभा में यह कहने के लिए विवश हो जाते हैं -

भयउ न भुअन भरत सम भाई ॥

(रा० २/२५९-४)

भरत के समान दुनिया में अभी कोई दूसरा भाई नहीं हुआ। भरत के सामने जब यह समस्या आती है तो भरत गम्भीरता के साथ उस पर विचार करते हुए हाथ जोड़ कर केवल एक उत्तर देते हैं -

संसयसील प्रेम बस अहहू ।
सबुइ उचित सब जो कछु कहहू ॥

आप लोग जो कह रहे हो धर्म शास्त्र की दृष्टि से नहीं कह रहे। कुछ तो संशय के वश होकर, कुछ शील के वश और कुछ प्रेम के वश होकर कह रहे हो। आप लोगों को यही उचित है, जो कुछ आप कह रहे हो ठीक कह रहे हो। अपनी दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति ठीक कहता है।

एक बात और मैं सुनाऊँ। एक बार हमारे यहाँ विद्वानों की गोष्ठी हो रही थी। कुछ लोगों ने कहा कि हिन्दू धर्म में जो अनेक सम्प्रदाय हैं, अनेक विचारधाराएँ हैं, यही हमारी फूट में कारण हैं। यदि ये सारे सम्प्रदाय समाप्त कर एक विचारधारा हो जाए तो यह फूट समाप्त हो सकती है। बाद में मेरी बारी आई तो मैंने उससे कहा कि भले आदमी ! एक विचारधारा होने पर हमारे में एकता हो जाएगी, यह आपको किस ने बता दिया ? अनेक विचारधाराएँ फूट में कारण बनती हैं, यह कहाँ का सिद्धान्त है ? भला आप देखिए, पश्चिम में एक विचारधारा Cotholic है और दूसरी Protestant है। जानते हो दो महायुद्ध किसने लड़े हैं ? Protestants ने। इंगलैंड के शासन में किसी Cotholic के लिए स्थान नहीं है। एक सम्राट Catholic लड़की से प्रेम कर लिया था जिसके नाते उसे सम्राट पद से त्याग पत्र देना पड़ा। Protestant की जड़ जर्मनी है। जर्मन Pure protestant है। इंग्लैंड और जर्मनी दोनों एक ही विचारधारा, एक ही सम्प्रदाय को मानने वाले हैं और दोनों महायुद्ध इन्हीं दोनों ने लड़े हैं। इतना ही नहीं बहुत दूर क्यों चले जाएँ, आप क्या समझते हैं कि कौरव और पाण्डव दोनों दो सम्प्रदाय के थे ? एक ही परिवार के थे सम्प्रदाय तो दूर की बात है। हमने तो यह भी कहा कि भाई, राम और रावण दोनों एक सम्प्रदाय के थे। दोनों शुद्ध शैव थे। दोनों का इष्ट एक था लेकिन फिर भी युद्ध हुआ। सब का इष्ट एक हो जाएगा तब प्रेम हो जाएगा, ऐसा नहीं होता। हमने कहा कि मुसलमानों के केवल एक कुर्आन है दूसरी पुस्तक है ही नहीं फिर भी आपस में बरसों से लड़ते आ रहे हैं।

आपको एक और उदाहरण दूँ। जिस रामचरितमानस को आप पढ़ते हैं उसमें परमात्मा चार रूपों में प्रकट होता है - राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। चारों भाईयों की चार विचारधाराएँ हैं। जो बात राम मानते हैं लक्ष्मण

नहीं मानते। जो लक्ष्मण मानते हैं वो भरत नहीं मानते। जो भरत मानते हैं वह शत्रुघ्न नहीं मानते। चारों भाईयों की बिल्कुल स्वतन्त्र विचारधारा है। जो प्यार चारों भाईयों में आपको रामायण में मिलेगा वह दुनिया के इतिहास में कहीं नहीं मिलेगा। राम की घोषणा है -

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालें।
चलिहुँ कुमग पग परहिं न खालें॥

(रा० २/३१५-५)

माता, पिता, गुरु और स्वामी यदि कुमार्ग पर चलने के लिए कहदें तब भी आदमी को चल देना चाहिए। उसका पांव कभी नीचे नहीं गिरेगा क्योंकि उसने आज्ञा का पालन किया है। लक्ष्मण ने क्या कहा ?

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू।
कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥

(रा० २/७२-४)

वे भगवान् राम से कहते हैं कि मैं तो माता, पिता और गुरु को जानता ही नहीं। मानने की बात तब हो जब मैं जानूं, जब मैं जानता ही नहीं तो मानूं किसको? अरे भाई तुम्हारे कोई माता-पिता-गुरु नहीं हैं ? बोले नहीं -

मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी।
दीनबंधु उर अतंरजामी॥

(रा० २/७२-६)

अब आइये भरत को देखिए! भरत से अधिक राम को प्रिय और कौन होगा? जिस माँ की बात को मान कर राम वन को गए हैं उस माँ को भरत क्या कहते हैं ?

बर मागत मन भइ नहिं पीरा।
गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥

(रा० २/१६२-२)

जिस पिता की बात मान कर राम वन को गए हैं उस पिता के लिए भरत क्या

कह रहे हैं ?

भूपं प्रतीति तोरि किमि कीन्ही ।
मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही ॥

(रा० २/१६२-३)

उनकी मृत्यु नजदीक आई थी इसलिए उनकी बुद्धि मारी गई, यह पिता के लिए भरत कह रहे हैं। इतना ही नहीं गुरु के विषय में तो भरत ने और कठोर शब्द कहे हैं। वह कहते हैं कि दुनिया जानती है कि मेरे गुरु वशिष्ठ जी विवेक के समुद्र हैं-

गुर बिबेक सागर जगु जाना ।
जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना ॥

(रा० २/ १८२-१)

सारा विश्व गुरु के हाथ में बदरी फल के समान है। हमारे यहाँ आयुर्वेद का एक श्लोक है 'हरीतकी सदा पथ्य कुपथ्यं बदरी फलम् ' हरड़ें सदा पथ्य होती हैं। माँ का दूध नुकसान कर सकता है लेकिन हरड़ें नुक्सान नहीं कर सकती। बदरी फल को कुपथ्य बताया है। यदि किसी रोगी को दे दिया जाएं तो यदि वह मरने वाला न भी हो तो भी मर जाए। भरत जी कह रहे हैं कि मेरे गुरुदेव विवेकशील हैं, इनके हाथ में सारा विश्व बदरी फल के समान है और वह यह बदरी फल मुझे देना चाहते हैं -

मो कह तिलक साज सज सोऊ ।
भएँ बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ ॥

(रा० २/१८२-२)

आज मेरा विधाता मेरे से विमुख हो गया है इसलिए गुरुदेव भी विमुख हो गए हैं। वो कुपथ्य मुझे दे रहे हैं। क्या कोई गुरु अपने शिष्य को कुपथ्य देता है ? नहीं। भगवान् ने कहा -

कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी ।
बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥

(रा० १/१३३-१)

यदि रोगी कुपथ्य मांगे भी तब भी वैद्य को नहीं देना चाहिए।

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥

(रा० ५/३७)

यदि सचिव चापलूसी की बात करे तो राजा का नाश होता है। वैद्य यदि चापलूसी की बात करे तो रोगी का नाश होता है। गुरु यदि चापलूसी की बात करे तो शिष्य के धर्म का नाश होता है। महात्मा भरत ने गुरु को भी नहीं छोड़ा, साफ शब्दों में कहा -

मो कहँ तिलक साज सज सोऊ।
भएँ बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ॥

(रा० २/१८२-२)

इसमें और किसी का दोष नहीं है, बार-बार महात्मा भरत यही कहते हैं। हां, इतनी बात जरूर है कि भरतं ने यह कहा है -

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी।
सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥

(रा० २/१७७-३)

माता-पिता और गुरु की आज्ञा को प्रसन्नता के साथ सुनना चाहिए और बिना विचारे उसको कर लेना चाहिए।

उचित कि अनुचित किएँ बिचारू।

यदि माता, पिता, गुरु और स्वामी की बात को उचित है या अनुचित, ऐसा विचार किया तो -

धर्म जाए सिर पातक भारू॥

(रा० २/ १७७-४)

धर्म नष्ट हो जाता है और बड़ा भारी पाप लगता है। फिर आपकी क्या राय है? भरत जी कहते हैं -

जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें।

तदपि होत परितोषु न जी कें ॥

(रा० २/ १७७-६)

मैं अच्छी प्रकार से इसे जानता हूँ फिर भी मेरे हृदय को इससे संतुष्टि नहीं हो रही इसलिए मैं इसको स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूँ। सारी अयोध्या भरत की बात सुन करके स्तम्भित रह गई, आखिर भरत के विचार में है क्या ? ये राज्य नहीं करेंगे, गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करेंगे तो अयोध्या का क्या बनेगा ? सभी देख रहे हैं। भरत से पूछ रहें हैं कि आखिर आप करना क्या चाहते हो, यह तो बताईए ? भरत जी कहते हैं कि राज्य न करने का अर्थ यह नहीं है कि मैं अयोध्या की सम्भाल नहीं करूंगा। राज्य करना अलग बात है और अयोध्या की सम्भाल करना अलग बात। किसी वस्तु को सम्भालने से पहले वह वस्तु जिसकी है उसका परामर्श तो लेना ही चाहिए। गुरुदेव कह रहें हैं कि राय लेने की जरूरत नहीं है, वस्तु को तुम सम्भाल लो जब राम आयेगें तो उनको सौंप देना। भरत जी कहते हैं कि नहीं यह उचित नहीं। जब तक जिसकी जो वस्तु है उसकी जब आज्ञा न हो तब तक हमारा कोई कर्त्तव्य नहीं बनता इसलिए हमने तो एक ही निश्चय किया है -

तुम तौ देहु सरल सिख सोई ।

आप लोगों ने तो मुझे बिल्कुल सीधा सा रास्ता बता दिया राजमार्ग का कि गद्दी पर बैठ जाओ। बड़ा सीधा रास्ता है -

जो आचरत मोर भल होई ॥

(रा० २/ १७७-५)

जिसका आचरण करने से मेरा भला हो सकता है लेकिन यह बात मेरे लिए उपयोगी नहीं है -

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू ।
मोहि अनुहरत सिखावनु देहू ॥

(रा० २/ १७७-७)

आप लोगों ने तो मेरे को बिना जाने अपनी-अपनी बात कह दी। अब मेरी

प्रार्थना तो सुनिए आप लोग। रोगी से तो पूछिए कि तुम्हें क्या रोग है ? बिना रोगी से पूछे, बिना रोग का अनुसंधान किये यदि तुम अपने-अपने नुस्खे बताओगे और निदान करने की कोशिश करोगे तो रोग ठीक नहीं होगा। यदि रोग के विपरीत तुम निदान करोगे तो रोग और बढ़ेगा। तुम पहले मेरे से तो पूछो कि मेरी क्या स्थिति है -

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू।
मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥

(रा० २/ १७७-७)

मेरी प्रार्थना तो सुन लो और मेरे अनुरूप आप लोग मुझे शिक्षा दो। यह बात सुनते ही सारी सभा स्तम्भित हो गई। भरत क्या कहना चाहते हैं ? कहा-

उत्तरु देउँ केहि बिधि केहि केही।

(रा० २/१८१-४)

एक आदमी हो तो उसे उत्तर दे दिया जाए। इधर गुरु बैठे हैं, मन्त्री बैठे हैं, माँ बैठी है, शास्त्र के ज्ञाता बैठे हुए हैं, विद्वान बैठे हुए हैं, नागरिक बैठे हुए हैं, किस-किस को उत्तर दूँ -

उंतरु देउँ छमब अपराधू।

मैं आप सबसे प्रार्थना कर रहा हूँ और अब आपको उत्तर देने जा रहा हूँ, मेरा अपराध क्षमा करना -

दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥

(रा० २/१७७-८)

आप लोग महापुरुष हो और महापुरुष लोग किसी दु:खी के गुण और दोष को नहीं देखते क्योंकि दु:खी आदमी के हृदय में जो कुछ आयेगा वही वह कहेगा। सभी अवधपुरवासी स्तम्भित होकर देख रहे हैं कि देखो अब भरत क्या कहना चाहते हैं ? भरत ने कहा कि अच्छा यह बताओ आप लोग-

पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि रानु।

मेरे पिता तो स्वर्ग चले गए, भईया राम और सीता वन में हैं और आप अब मुझे

राजगद्दी पर बैठाना चाहते हो तो -

एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ कानु ॥

(रा० २/ १७७)

किसी कार्य में जब हम दूसरे को लगाते हैं तो केवल दो दृष्टिकोण से लगाते हैं या तो उसमें कोई अपना भला हो और या तो जिसको लगा रहे हैं उसका कोई भला हो। भरत जी पूछते हैं कि आप जो मेरे को राज्य करने के लिए मजबूर कर रहे हो, उसमें मेरा कल्याण देखते हो या अपना ? अपने स्वार्थ के लिए मुझे राजा बना रहे हो या मेरे हित के लिए मुझे राजा बना रहे हो ? यदि तो मेरे हित के लिए मुझे राजा बना रहे हो फिर तो मुझे क्षमा करना। मैं जानता हूँ कि मेरा हित किसमें है -

हित हमार सियपति सेवकाई ।
सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ॥

(रा० २/१७८-१)

मेरा हित तो श्रीसीता-राम की सेवा में था, वो तो मेरी माता की कुटिलता ने छीन लिया। अब रह गई आपके हित की बात कि मैं राजा बनूंगा तो आपका हित होगा। यह भी मैं आप लोगों से सत्य बता दूँ -

कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू ।
चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि रानु हठि देइहहु जबहीं ।
रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥

(रा० २/१७९-१,२)

याद रखो राजा धर्मात्मा होना चाहिए। यदि हठ करके आप मुझे राज्य देते हैं तो यह पृथ्वी रसातल को चली जाएगी। इससे बड़ा अनर्थ और क्या होगा? समाज के सामने एक गलत प्रमाण प्रस्तुत हो जाएगा। समाज देखेगा कि यदि हमारा राजा धोखे से अपने बड़े भाई का राज्य छीन सकता है तो हमें धोखे से दूसरों का धन छीन लेने में क्या आपत्ति है ? यह गलत उदाहरण हो जाएगा और याद

रखो-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

(गीता ३/२)

एक बड़ा व्यक्ति जो आदर्श प्रतिष्ठित कर देता है आम लोग उसी का अनुकरण करते हैं। उसी रास्ते पर दुनिया चलने लगती है इसलिए जो अपने आपको बड़ा समझता है उस पर बड़ा दायित्व होता है कि वह कोई ऐसा काम न करे जिससे उनका अनुकरण करने वाला समाज गर्त में पहुंच जाए। आज यह देश की दुर्गति क्यों हो रही है ? इसलिए हो रही है कि जो ऊँचे स्थान पर बैठे हुए हैं, जो समाज के कर्णधार हैं, जो समाज के आदर्श हैं वो जिस रास्ते पर चल रहे हैं अर्थात् जब वो ही बेईमान हैं, चोर हैं तो भला प्रजा किस रास्ते पर जाएगी ? महात्मा भरत इस रहस्य को जानते हैं कि मैं समाज के प्रति उत्तरदायी हूँ। यदि मैं कोई गलत काम करूँगा तो समाज उसी का अनुकरण करेगा, प्रजा भ्रष्ट हो जाएगी इसलिए भरत जी कहते हैं कि मैं ऐसा अनर्थ नहीं कर सकता। आप लोगों के कहने में आकर के मैं अपनी आत्मा की हत्या नहीं कर सकता। मैं धर्म की हत्या नहीं कर सकता। मैं समाज के लिए अभिशाप नहीं बन सकता। अभी गुरु की दृष्टि में यह कल्पना नहीं थीं, मन्त्री की दृष्टि में भी यह कल्पना नहीं थी तथा समाज के किसी भी वर्ग में यह कल्पना नहीं थी कि भरत की सोच इतनी दूर तक जा सकती है लेकिन जो सजग है, जो भिज्ञ है, जो विवेकी है, वह तो हमेशा लोक हित का चिन्तन करता रहता है। लोक हित का चिन्तन करने वाला व्यक्ति इस सत्य को जानता है कि यदि मैं किसी गलत काम को करूँगा तो मेरी प्रजा उसी का अनुकरण करेगी इसलिए भरत ने साफ शब्दों में कह दिया कि यदि आप लोग इसमें मेरा हित देखते हैं तो मेरा हित नहीं है, यदि अपना हित देखते हैं तो आप भ्रम में हैं। भरत के इस उत्तर के साथ और भी भरत ने बहुत कुछ कहा है, वह आपको कल बताया जाएगा।

हरि ॐ तत्सत

(७)

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ।

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक मंगल कामना। मेरे जीवन के साथ सम्बन्धित कुछ मुख्य स्थान हैं जिनको मैं नित्यप्रति वंदन किया करता हूँ। प्रथम वह स्थान जहाँ परमात्मा ने इस शरीर को इस पृथ्वी पर पैदा किया; दूसरा जहाँ पर सर्वप्रथम मुझे अपने परमाराध्य गुरुदेव के दर्शन हुए, तीसरा जहाँ मैंने धर्म शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की और चौथा जहाँ मैंने अपनी साधना की पूर्णता प्राप्त की। ये मेरे नित्य प्रति प्रातः काल के वन्दन के स्थान हैं। उनमें उदयपुर का मुख्य स्थान है जहाँ मुझे अपने जीवन की साधना में पूर्णता प्राप्त हुई। देश और विदेश के मेरे सभी शिष्य जब यह चर्चा सुनते हैं कि मेरी कठोरतम साधना जिसके विषय में कहा जाता है कि मरने के पश्चात् दूसरा जीवन प्रारम्भ होता है, उसकी पूर्ति उदयपुर में हुई तो उन सब की यह चाह होती है कि एक बार हम जरूर उस स्थान को देखें। मेरी उस साधना में जो मेरे सहयोगी रहे हैं, सभी प्रभु कृपा के भाजन बने हुए हैं। मेरे देशी और विदेशी शिष्यों को उन सभी को देखने की चाह भी होती है। कुछ वर्ष पहले मेरे कुछ विदेशी और स्वदेशी शिष्य मेरे साथ आए केवल उदयपुर को देखने की चाह लेकर। यहाँ पर उस स्थान को भी देखने गए जहाँ मैंने अपनी साधना का वह काल पूर्ण किया था। हमारी

साधना में प्रिय नाथूलाल जी अग्रवाल परम सहयोगी रहे हैं। उससे पहले यह साधना मैंने बाई जी राज कुण्ड पर प्रारम्भ की थी। एक जगह और भी पंजाब में है जो कि अब हिमाचल में है वहाँ भी प्रारम्भ की थी। गर्मी इतनी हो गई कि जब मैं अपनी खाल पकड़ता था तो ऊपर से उधड़ती थी। व्यवस्था न होने के नाते सारा शरीर ऐसा हो गया था लेकिन बाद में नाथू लाल जी का आग्रह, इनका प्रेम और इनके पिता जी की भक्ति भावना ने प्रेरित करके इनकी बाड़ी में साधना में प्रवृत्त हुआ। प्रत्येक प्रकार की सेवा दोनों पति पत्नी ने की। आप लोग जानते हैं कि जो इस प्रकार के कार्य में सहयोगी होते हैं वो परमात्मा की कृपा के भाजन बनते हैं। योगदर्शन में एक सूत्र है -

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ।

(यो० सू० ४/७)

भगवान् व्यासदेव ने अपने भाष्य में लिखा कि योगी के कर्म अकृष्ण और अशुक्ल होते हैं यानी दोष और गुण दोनों से रहित होते हैं। आम लोगों को उसका तीनों प्रकार का फल मिलता है, अच्छा किया तो अच्छा मिला, बुरा किया तो बुरा मिला, मिश्रित किया तो मिश्रित मिला। यहाँ पर एक शंका उठाई है कि कर्म तो अपना फल देगा चाहे आप चाहो तब भी न चाहो तब भी। योगी जब निष्काम भाव से कर्म करता है, साधना करता है तो उस साधन में जो गुण-दोषात्मक परिणति होती है उसका परिणाम होता ही नहीं क्या ? कहा की नहीं, होता है। फिर वो कर्म फल क्या होता है क्योंकि योगी तो उसे चाहता नहीं। उन्होंने वहाँ पर उसका समाधान करते हुए कहा कि योगी की साधना में जो लोग सहयोगी होते हैं उसका पुण्यफल तो सारा वे ले लेते हैं। जो उस योगी के प्रति दोष दृष्टि वाले होते हैं अशुभ फल सारा उनके पास चला जाता है। योगी पुण्य और पाप दोनों से मुक्त रहता है। मेरी साधना में जो- जो लोग सहयोगी रहे हैं, इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवत कृपा के वे भाजन बने हैं। इस उदयपुर की धरती को मैं ही नहीं बल्कि ब्रह्मर्षि मिशन जो कि दुनिया में एक मुख्य स्थान रखता है, वह भूल नहीं सकता हम यहां २२ वर्ष तक नहीं आए। अपने कार्य में व्यस्त रहे, अधिकांश समय

मेरा विदेश में बीता लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं कि मैं उदयपुर को भूल गया। इसे तो मैं नित्यप्रति नमस्कार करता हूं। उदयपुर की जनता के प्रति मेरी अनन्त मंगल कामनाएँ सदैव बनी रहती हैं। आप उसी उदयपुर के निवासी हो जहाँ की पवित्र धरती ने मेरी साधना को पूर्णता प्रदान की है। अब रही यहाँ आने की बात तो आप लोग जानते हैं कि पहले मैं कई-कई महीने यहाँ रहता था। उस समय हम उस कार्य की तैयारी में लगे थे जिस कार्य को करने मैं इस शरीर में गुरुदेव के निर्देशानुसार आया था। वह तैयारी तो एक जगह रह करके की जाती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में दौड़ते हुए तैयारी नहीं होती। तैयारी करने के बाद जब अपना कार्य पूरा कर लिया तो गुरुदेव की प्रेरणा से अब काम में लग गए हैं।

इस समय दुनिया इतनी छोटी हो गई है कि मैं आपको क्या बताऊँ। यहाँ से १६००० मील दूर एटलांटिक महासागर के टापुओं में भी जब मैं जाता हूँ तब भी लगता है कि मैं भारत में ही बैठा हुआ हूँ। वहाँ से चलता हूँ तो वहाँ भी रोने वाले मिल जाते हैं जो यह सोचते हैं कि पता नहीं अब गुरु जी कब मिलेंगे। मेरा ऐसा अनुभव है कि योग मार्ग बहुत सूक्ष्म है, इसमें शरीर इतना सूक्ष्म और ग्राहक बन जाता है कि प्रत्येक स्थिति को बड़ी जल्दी पकड़ने लगता है। सारी दुनिया में घूमते हुए अत्याधिक व्यस्तता के नाते मैं शरीर की सम्भाल न कर सका। अमेरिका की यूनिवर्सिटी में मैं नौ-नौ घण्टे लगातार बोला हूँ एक विषय पर नहीं नौ अलग विषयों पर।

अमेरिका में वर्जीनिया बीच एक प्रान्त है जहाँ की नोरफोक एक यूनिवर्सिटी है। वहाँ पर २४ दिन का मेरा Series of lectures रखा था। यूनिवर्सिटी के आमन्त्रण पर मैं गया था। वहाँ पर विभिन्न विषयों पर कभी-कभी सात-सात, आठ-आठ, नौ-नौ घण्टे बोलना होता था। मैं यह समझता नहीं था कि थकान किसे कहते हैं, स्वास्थ्य खराब क्या होता है। इस प्रकार से विदेशों में काम किया और काम करने का परिणाम यह है कि आज हजारों लोग और वहाँ के पठित वर्ग के जो लोग हैं, वे लाभान्वित हुए हैं। उन देशवासियों ने मेरा आदर किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि वहां के Television वहां के Radio वहाँ के

समाचार पत्र ने हमें बहुत ही आदर पूर्वक स्थान दिया है और वहाँ के लोगों ने भी श्रद्धा और सद्भावना से ग्रहण किया जो मैंने कहा। सारी दुनिया मेरे लिए एक अपना परिवार जैसा बन गया है। मैं कभी सोचा करता था कि ऋषियों ने जो बात कही है -

अयं बन्धुरयं नेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

(महोपनिषद् ६/७१-७२)

यह भावात्मक अभिव्यक्ति है यथार्थ नहीं है लेकिन अब मैं उस जीवन को जी रहा हूँ और देख रहा हूँ कि यह भावात्मक अभिव्यक्ति नहीं है बिल्कुल यथार्थ है। सारा विश्व एक परिवार के सिवाय कुछ नहीं है। अब बारह महीने में मैं कितना समय सारी जगह से निकाल कर उदयपुर के लिए दे सकता हूँ, यह आप लोग समझ सकते हैं। यदि एक बार भी बारह महीने में मैं यहाँ आ जाया करूँ तब भी आप लोग इसे बहुत करके समझें। इस धरती का ऋण चुकाने के लिए नहीं बल्कि इसको नमस्कार करने मैं आया करता हूँ।

ब्रह्मर्षि मिशन का जो प्रयोजन है उसे आप इतने दिनों से सुन रहे हैं। चाहे गीता, रामायण, उपनिषद् वा हनुमान चालीसा की ही व्याख्या क्यों न करूं तब भी मैं उसी सिद्धान्त को उसके माध्यम से समझाना चाहूंगा जो मैं बताना चाहता हूँ। ग्रन्थ तो एक माध्यम होता है। ग्रन्थ वो बात कह रहा है या नहीं कह रहा लेकिन मैं वही बात ग्रन्थ में से ढूंढ करके आपको बता रहा हूँ क्योंकि आपकी श्रद्धा ग्रन्थ में है मेरे में नहीं। मेरे में तो उनकी श्रद्धा है जो मुझे गुरु मानते हैं। आम जनता की श्रद्धा तो ग्रन्थ में होती है। यदि मैं कहूँ कि यह मैं अपनी अनुभूति कह रहा हूँ तो आप कहेंगे कि अपनी अनुभूति अपने पास रखो। जब मैं यह कहता हूँ कि यह ग्रन्थ कह रहा है तो आप कहते हैं कि हां, यह बिल्कुल सत्य बात है। मेरे से पहले जितने आचार्य हुए हैं उन्होंने भी यह किया है। उन्होंने ग्रन्थों के माध्यम से अपनी बात कही है। मैं भी ग्रन्थ के माध्यम से अपनी बात कहता हूँ। जो सत्य मैंने समझा है, जाना है, अनुभव किया है, उस सत्य के प्रति

आपकी निष्ठा जागृत करना; आपको उस सत्य की तरफ प्रेरित करना यह मेरा प्रयोजन है। इसी को मिशन कहते हैं। मिशन का हिन्दी में अर्थ होता है उद्देश्य। ब्रह्मर्षि मिशन माने ब्रह्मर्षियों का उद्देश्य। भारत में जितने ब्रह्मज्ञ, तत्त्वज्ञ हुए हैं, ब्रह्मविद्या के विद्वान् पण्डित हुए हैं, उन ब्रह्मर्षियों का उद्देश्य क्या रहा है, उनका प्रयोजन क्या रहा है, उसके सम्बन्ध में मैंने ब्रह्मर्षि मिशन की स्थापना की है और उन ब्रह्मर्षियों की अनुभूति के साथ अपनी अनुभूति को आत्मसात करते हुए मैं जनसामान्य में उसें पहुंचाना चाहता हूँ और मेरे आवाहन पर ऐसे पच्चासों लोगों ने अपना जीवन समर्पित किया है। अब तो बहुत से विदेशी भी इस काम में लगे हैं। मैं कहा करता हूँ कि तुम मुझे Raw material दो मैं तुम्हें देवता बना कर दूंगा। यह भगवत कृपा का प्रसाद है।

कई दिनों से मैं भरत चरित्र के माध्यम से यह बात समझा रहा हूँ कि व्यक्ति समाज के लिए है या समाज व्यक्ति के लिए ? इस दृष्टि को लेकर के मैं सारी दुनिया में यह बात बताना चाहता हूँ और आपको भी समझा रहा हूँ कि समाज व्यक्ति के लिए नहीं है व्यक्ति समाज के लिए है। व्यक्ति समाज का अंग है। अंग हमेशा अंगी के लिए हुआ करता है। अंगी कभी अंग के लिए नहीं। आपका हाथ आपके लिए है आप हाथ के लिए नहीं हैं। आपका पांव आपके लिए है आप पांव के लिए नहीं हैं। आपका शरीर आपके लिए है आप शरीर के लिए नहीं हैं। इसी प्रकार हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में जहां पर विराट्, विराट् के पश्चात् सम्राट, सम्राट के पश्चात् राट् और राट् के पश्चात् हमारे ऋषियों ने एक व्यक्ति विशिष्ट को प्रतिष्ठित किया है और समझाया है कि ये सारे के सारे एक दूसरे से अभिन्न सम्बन्ध रखते हैं। तत्त्वज्ञ अपने व्यष्टि भाव को स्वयं के लिए सुरक्षित नहीं रखते बल्कि विराट् की सेवा में स्वयं को समर्पित करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। जिसने स्वयं को समष्टि की सेवा में, विराट् की सेवा में समर्पित किया है आज हम उसको हृदय से याद करते हैं, पूजते हैं और नाम लेते ही सर झुक जाता है। जिसने विराट् को अपने भोग का साधन बनाने की चेष्टा की, जिसने विराट् को अपने स्वार्थ सिद्धि में प्रयोग करने की चेष्टा की, आज

उसको लोग बड़ी हीन भावना से देखते हैं। हमारे हिन्दू समाज में राम को हुए आठ लाख ६९ हज़ार वर्ष हो गए हैं, इतने वर्षों में हमारे समाज में यदि पता लगायेंगे तो बहुत सी माताएं होंगी जिनका नाम कौशल्या होगा, सुमित्रा होगा लेकिन कोई अपनी पुत्री का नाम कैकेई नहीं रखता। कैकेई नाम क्यों नहीं रखते? क्यों हिन्दू समाज ने उसे सदा के लिए त्याग दिया ? क्यों वह नाम अशुभ हो गया? केवल इसके नाते कि वह कैकेई विराट् को अपने स्वार्थ की पूर्ति का माध्यम बनाना चाहती थी। वह बना नहीं सकी क्योंकि उसका पुत्र इतना महान् निकला जिसको वह स्वयं भी नहीं जान सकी। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने साकेत में लिखा है -

जन कर भी जननी जान न पाई जिसको ।

जन्म देने वाली माता भी जिसके यथार्थ स्वरूप को न समझ सकी वो महात्मा भरत यदि कैकेई के चारे लग जाते तो आज रामायण की यह रूप रेखा न होती। यदि कोई पूछे कि राम राज्य की प्रतिष्ठा का मूल आधार स्तम्भ कौन है तो यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं होगा कि महात्मा भरत। जिस राम राज्य की आप कल्पना करते हैं यदि आप भरत के जीवन का अनुकरण करने लगें तो इस देश में इस धरा पर पुन: राम राज्य को प्रतिष्ठित होने में देर नहीं लगेगी। क्या आप कभी लोक हित में अपने स्वार्थ का त्याग करने को तैयार होते हैं ? क्या कभी आप सारे तथाकथित धर्म बन्धनों को तिनके के समान फैंकने को तैयार हो सकते हैं जैसे भरत जी हो गए ?

गुरु कह रहे हैं -'भरत ! मेरी आज्ञा का पालन कर।' कौशल्या माँ कह रही है -'भरत! मेरी आज्ञा का पालन कर। सचिव कह रहा है, प्रजा कह रही है कि तुम इस समय धैर्य धारण करके राज्य सम्भाल लो। यदि तुम राज्य नहीं करोगे तो क्या करोगे ? यदि तुम राज्य नहीं करोगे तो अयोध्या सम्भलेगी कैसे? बहुत बड़ी समस्या है लेकिन भरत का सबके सामने एक ही प्रश्न है कि पिता तो स्वर्ग चले गए, राम, लक्ष्मण और सीता वन में हैं और आप मुझे कह रहे हैं कि मैं राजा बन जाऊँ -

एहिं ते जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु ॥

(रा० २/१७७)

हमें उपनिषद् में एक भारतीय महिला का आदर्श वाक्य पढ़ने को मिला और उससे भी महत्वपूर्ण हमें रामचरितमानस में भरत का यह प्रश्न मिला पढ़ने को। भारतीय महिला का वह शब्द क्या है वह भी मैं आपको बताता हूं।

याज्ञवल्क्य एक महान् ऋषि हुए हैं। उनकी दो पत्नियां थीं - मैत्रेयी और कात्ययानी। एक दिन याज्ञवल्क्य ने यह निश्चय किया कि अब मैं परिव्रज्या ग्रहण करूँगा, संसार में बहुत रह लिया। वह राजगुरु थे, बहुत शास्त्रार्थ करके उन्होंने धन इक्टठा किया था। उन्होंने निश्चय किया कि अब मैं परिव्रज्या ग्रहण करूँगा इसलिए अपनी दोनों पत्नियों को बुलाया और कहा - देवियो! यहाँ आ जाओ।' उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति को दो भागों में बाँट दिया और कहा कि ये तुम सम्भालो। कात्ययानी चुप रही, मैत्रेयी पूछने लगी, ''भगवन्! आप क्या करेंगे ? '' कहा कि मैं सन्यास लेने जा रहा हूँ। वह सोचने लगी कि इसका अभिप्राय यह है कि सांसारिक सुखों से भी अधिक सुख की उद्भावना होगी तभी तो ऋषि सांसारिक सुखों का त्याग करके आगे बढ़ रहे हैं।

मनुष्य की प्रवृत्ति है कि जब तक उसे दस के बदले में २० पाने की सम्भावना न हो तब तक वह १० का त्याग नहीं करता। जब आप दस का त्याग कर रहे हैं तो इसका अभिप्राय है कि अभी आपको २० पाने की सम्भावना है तभी तो त्याग करने के लिए तैयार हो गए। मैत्रेयी ने कहा कि भगवन्! परिव्रज्या ग्रहण करने से आपको क्या मिलेगा ? उन्होंने कहा कि अक्षय सुख का साधन त्याग है। उसने फिर पूछा -'फिर यह धन हम लोगों को किस लिए दे रहे हो ? इस धन से मुझे क्या मिलेगा ? याज्ञवल्क्य ने कहा -'प्रिय इस धन से तुम्हें सुविधा मिलेगी। जो एक धनी व्यक्ति के पास सुविधा होती है, वह सारी सुविधा तुम्हें इससे मिल जाएगी। आप लोग याद रखें.पैसे से आप अपना मकान सुन्दर बना सकते हैं लेकिन पैसे से अपना जीवन सुन्दर नहीं बना सकते। पैसे से आप सुन्दर बिस्तर खरीद सकते हैं लेकिन पैसे से आप नींद नहीं खरीद सकते। पैसे

से आप भोजन की अच्छी सामग्री खरीद सकते हैं लेकिन पैसे से आप भूख नहीं खरीद सकते। पैसे से आप सुन्दर स्त्री ला सकते हैं लेकिन पैसे से आप को धर्मपत्नी नहीं मिलेगी। मेरे कहने का अभिप्राय कि पैसे से आप महत्वपूर्ण वस्तु खरीद सकते हैं लेकिन सुख नहीं खरीद सकते। याज्ञवल्क्य ने कहा - 'प्रिय! पैसे से तुम्हें सारे सुख के साधन जैसे एक धनी व्यक्ति प्राप्त करता है, मिल जायेंगे। मैत्रेयी ने मुस्कराते हुए कहा कि देव! क्या इससे मुझे अमरत्व मिलेगा? कहा कि अमरत्व तो नहीं मिलेगा। मैत्रेयी ने दृढ़ता के साथ बड़े ज़ोरदार शब्दों में कहा - 'ऋषिवर! मैंने आपको पति रूप में वरण इसलिए नहीं किया था कि मुझे सम्पत्ति चाहिए थी। सम्पत्ति की यदि चाह होती तो किसी राजकुमार को वरण करती। मैंने आपको पति रूप में वरण किया था अमृतत्त्व की प्राप्ति के लिए-

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम् ।

(बृहदा० ५/४)

जिससे मैं अमृत को प्राप्त नहीं कर सकती उसको मैं लेकर क्या करूंगी, ऐसा कहते हुए उस देवी ने सारी सम्पत्ति को ठोकर मार दी। मैं भारत की उस नारी की कथा सुना रहा हूँ जिसके लिए लोग कहते हैं कि नारी में तो लोभ का ही प्राबल्य होता है। जब उस देवी ने सम्पत्ति को ठोकर मार दिया तब ऋषि प्रसन्न हो गए और कहा - 'मैत्रेयी! मैं जानता था कि तुम इस मिट्टी के कणों की आराधिका नहीं हो। यदि तुम्हें अमृतत्त्व चाहिए तो अब तुम मेरे पास आओ। मैं तुम्हें अमृत तत्त्व का रास्ता बता रहा हूँ। वो मैत्रेयी और याज्ञवल्क्य का सम्वाद बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्मविद्या का श्रेष्ठतम् स्वरूप कहा जाता है। उसमें याज्ञवल्क्य का मैत्रेयी के लिए उपदेश, अमृतत्त्व की प्राप्ति का साधन और तत्त्व ज्ञान की बात समझाई गई है। मूल बात इतनी है -

सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु
कामाय सर्वं प्रियं भवति ।

(बृहदा० ५/६)

उन्होंने कहा कि मैत्रेयी ! आत्मा के लिए ही इस दुनिया का वैभव प्रिय लगता है। यदि आत्मा न हो तो इस दुनिया के वैभव का कोई मूल्य नहीं है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि जैसे मैत्रेयी ने सम्पूर्ण वैभव को केवल एक वाक्य कहते हुए ठोकर मारा -

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम् ।

इसी रूप से महात्मा भरत राज समाज के समक्ष, गुरुदेव के समक्ष एक प्रश्न करते हैं कि आप जो मुझे राज्य देना चाहते हो इसमें आप अपना हित समझते हो या मेरा हित समझते हो ? अपने हित के विषय में तो मैं अच्छी प्रकार जानता हूं कि यह राज वैभव -

सोक समानु रानु केहि लेखें ।
लखन राम सिय बिनु पद देखें ॥

(रा० २/१७८-३)

शोक से भरा हुआ राज समाज मेरे लिए किस गिनती में है ? इसका क्या मूल्य है मेरी दृष्टि में ? कोई मूल्य नहीं है। यह व्यर्थ है मेरे लिए। कैसे व्यर्थ है? जैसे-

वादि बसन बिनु भूषन भारू ।

एक नारी को नख से सिख तक आभूषण पहना दिए जाएँ, रत्नों से लाद दिया जाए लेकिन यदि उसे कोई वस्त्र न पहनाया जाए तो जरा सोचिए आप, क्या शोभा होगी उस नारी की ? वस्त्र के बिना उन आभूषणों की कोई महिमा है? नहीं है। वस्त्र के बिना भूषण जैसे भार है, वह शोभा की वृद्धि नहीं करता ऐसे ही-

बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू ॥

(रा० २/१७८-४)

वैराग्य के बिना ब्रह्म विचार भी व्यर्थ है। जो लोग राग में फंसे हुए 'हम भी ब्रह्म तुम भी ब्रह्म' की कहानी करते रहते हैं, उनकी यह गाथा व्यर्थ है। ब्रह्म विचार वैराग्य के पश्चात् फलीभूत होता है। संसार भी हाथ में रहे और परमात्मा भी बगल में दबा लें, यह बहुत ही मुश्किल है। ऋषि से पूछा गया कि क्या बिना

परमात्म बोध के शान्ति नहीं मिल सकती ? कहा कि मिल सकती है। कैसे मिल सकती है ? उन्होंने कहा कि जब मनुष्य में इतनी क्षमता आ जाए-

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥

(श्वेता० ६/२०)

इतनी योग्यता आ जाए कि वह आकाश को चमड़े के समान लपेट कर अपने बगल में दबाने की शक्ति रखे। तब परमात्मा के बोध के बिना भी उसे शान्ति मिल जाएगी। कहा कि भगवन्! आकाश को चमड़े के समान लपेटना तो असम्भव है। ऋषि कहता है कि इसी प्रकार से परमात्मा के बोध के बिना तुम्हारे जीवन में सुख-शान्ति की प्रतिष्ठा भी असम्भव है। तुलसीदास जी ने तो वेद के इसी मन्त्र का अनुवाद किया अपनी रामायण में -

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल ॥

(रा० ७/१२२)

कहा कि जल के मथने से भले ही घृत मिल जाए और बालू को कोहलू में डाल कर पेरने से भले तेल निकल आए, यह असम्भव सम्भव हो जाए लेकिन भगवान् की भक्ति के बिना इस संसार सागर से तरा नहीं जा सकता। परमात्म बोध के बिना संसार सागर से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। जैसे -

बसन हीन नहिं सोह सुरारी ।
सब भूषन भूषित बर नारी ॥

(रा० ५/२८-४)

सारे आभूषणों से नारी अलंकृत हो लेकिन यदि उसे वस्त्र न पहनाए जाएँ तो वह कभी भी शोभा को प्राप्त नहीं होती, इसी रूप से -

वादि बसन बिनु भूषन भारू ।
बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू ॥

(रा० २/ १७८-४)

ब्रह्म का विचार वैराग्य बिना व्यर्थ है। ब्रह्म माने जो सर्वत्र एक परिपूर्ण है, जो सर्वव्यापक है। रति किसे कहते हैं ? एक सीमा में आसक्त हो जाना। विरति किसे कहते हैं ? सीमा से मुक्त हो जाना। जब तक सीमा से मुक्त नहीं होते तब तक तुम अनन्त में कैसे विचरण कर सकते हो ? अनन्त में विचरण करने के लिए, अनन्त का बोध प्राप्त करने के लिए तुम्हें उस सीमा से मुक्त होना पड़ेगा। सीमा को पकड़े रहो और अनन्त की चर्चा भी करते रहो, कहा कि ये दोनों नहीं हो सकता। तुलसीदास जी ने कहा है -

ब्रह्मग्यान बिनु नारी नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥

कलियुग में ब्रह्मज्ञान के बिना और कोई दूसरी चर्चा मनुष्य नहीं करते लेकिन एक कौड़ी के लिए लोभ के बस होकर और की तो बात छोड़ो विद्वान और गुरुजनों का भी गला दबाने में कोई संकोच नहीं करते। इस प्रकार के ब्रह्मज्ञान की चर्चा करने से कुछ नहीं होने का। उदाहरण क्या दिया भरत ने?

सरुज सरीर बादि बहु भोगा।

रोगी व्यक्ति के लिए सारा भोग व्यर्थ है। भाई! दूध पीओगे ? नहीं, दूध तो डाक्टर ने पीने के लिए मना किया है। कहा कि चाए पी लो। हाँ, चाय तो पी सकते हैं लेकिन चाए में दूध और चीनी न डालना। क्यों क्या बात है ? कहा कि शूगर है, डाक्टर ने मना किया है। दूध नहीं पी सकते, चीनी नहीं पी सकते, केवल काली चाए पी सकते हैं। आजकल कहते हैं कि हम काली चाए पीते हैं सफेद नहीं पीते, नुकसान करती है। अरे भाई! साफ कहो कि सफेद चाय पीने की शरीर में हिम्मत नहीं है -

सरुज सरीर बादि बहु भोगा।
बिनु हरिभगति जायँ जप जोगा॥

(रा० २/१७८-५)

दुनिया का सारा वैभव तुम्हारे सामने हो लेकिन शरीर रोगी हो गया तो तुम्हारे लिए सारा भोग व्यर्थ हो जाएगा। इसी रूप से भरत जी कहते हैं कि तुम्हारा जप

भी व्यर्थ है, योग भी व्यर्थ है यदि भक्ति में तुम्हारी अनुरक्ति नहीं हुई। भक्ति में अनुरक्ति तो तब होगी जब भगवान् के साथ तुम्हारा सम्बन्ध हो जाएगा। भगवान् के साथ कोई सम्बन्ध बना लोगे तो भगवान् में तुम्हारा प्रेम हो जाएगा। हमारे इतिहास में जितने महापुरुष हुए हैं उन्होंने भगवान् के साथ अपना एक सम्बन्ध स्थापित किया है। भारत में ही नहीं यह प्रक्रिया सारी दुनिया में रही है। ईसा भगवान् को बाप मानते थे। उनसे पूर्व मोसेस हुए हैं, वो भगवान् को बाप नहीं मित्र मानते थे। जेरुसेलम की एक पहाड़ी के छोर पर जाकर बैठते थे, ध्यान करते थे और भगवान् को अपना मित्र मानते थे। वेद में भगवान् को मित्र कहा गया है -

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ॥

(श्वेता० ४/६)

भगवान् तुम्हारा सखा है, भगवान् तुम्हारा पिता है, भगवान् तुम्हारी माता है, भगवान् के साथ तुम्हारे बहुत से सम्बन्ध हैं।

मोसेस जो थे वे भगवान् को मित्र मानते थे। वो रोज़ जाते थे तूर पर यानी शिखर के ऊपर और एक गडरिया नित्यप्रति उन्हें जाते देखता था। एक दिन वो सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया ओर कहा - हज़रत! आप कहां जाते हैं? कहा, तूर पर जाता हूँ। पूछा, किस लिए जाते हो? कहा, खुदा से वार्तालाप करने। खुदा से आपका क्या सम्बन्ध है? खुदा मेरा दोस्त है। गडरिये ने पूछा, क्या खुदा मेरे साथ भी दोस्ती करेगा? उन्होंने कहा, पूछ लूंगा, हो सकता है खुदा तुम्हारे साथ भी दोस्ती कर ले। खुदा को अपनी तरफ से प्रार्थना करना कि वह मेरे से भी दोस्ती करले। मौसेस ने कहा कि बड़ी अच्छी बात है। गडरिया वहाँ इन्तज़ार करता रहा। जब पांच छः घण्टे हो गए तो मौसेस वहाँ से नीचे उतरे। वो आगे आकर खड़ा हो गया। कहा खुदा ने मेरे लिए क्या कहा? कहा कि खुदा ने तुम्हारी दोस्ती पक्की कर ली। खुदा ने कह दिया कि आज से मेरी और उसकी दोस्ती पक्की। वह बहुत खुश हुआ। नाचता गाता हुआ उस दिन जब भेंड़ें लेकर

के अपने बाड़े में आया तो रात भर उसे नींद नहीं आई। सुबह उठ कर उत्साह में जब अपनी भेड़ों के पास गया तो देखा चार-पांच सौ भेड़ें मरी पड़ी थीं। यह देख कर बड़ा हैरान हुआ कि यह क्या हुआ, मेरी भेड़ें कैसे मर गई ? खुदा से दोस्ती की थी भेड़ों की वृद्धि के लिए। बात तो उल्टी पड़ गई। सोचने लगा कि खुदा से दोस्ती हुई है इसमें कुछ भेड़ें चली गई तो कोई बात नहीं। दूसरे दिन फिर देखा तो दो-चार सौ भेड़ें मरी हुई मिली। उसे लगा कि यह खुदा की दोस्ती बड़ी महंगी है। इस प्रकार तो मेरी सारी भेड़ें मर जाएंगी। वह घबराया हुआ गया और उसी रास्ते पर खड़ा हो गया जिधर से मौसेस जाते थे। मूसा को देखा और आकर प्रणाम किया। घबराया हुआ बोला - साहब ! मेरी तो सारी भेड़ें मरती जा रही हैं। तीन दिनों में तो हमारी हज़ारों भेड़ें मर गई हैं। यह खुदा की दोस्ती बड़ी महंगी पड़ी। कहा कि अब तुम क्या चाहते हो ? उसने कहा कि खुदा से प्रार्थना करना कि अपनी दोस्ती तोड़ दे, इतनी महंगी दोस्ती हमें नहीं चाहिए। हज़रत मूसा ने कहा कि मैं खुदा से मिल कर आऊँगा तो तुम्हें बता दूंगा। वह वहीं खड़ा इन्तज़ार करता रहा। जब हज़रत मूसा लौट करके आए तो उसने दौड़ करके पूछा - 'खुदा ने क्या कहा ? मौसेस ने कहा कि भई, खुदा ने कहा है - पहले तो मैं किसी से जोड़ता नहीं, यदि जोड़ लेता हूँ तो तोड़ता नहीं। उसने पूछा फिर मेरी भेड़ों का क्या होगा ? खुदा ने कहा कि मैं तो एकांगी प्रेम चाहता हूँ, अनन्य प्रेम चाहता हूँ। अनन्य प्रेम क्या होता है? कहा कि या तो तुम खुदा को प्रेम करलो या भेड़ों को। खुदा कहते हैं कि जब तुम्हारी मेरे से दोस्ती हो गई तो मेरे से भी प्रेम करेगा और भेड़ों को भी सांझीदार बनायेगा, यह तो मैं सहन नहीं कर सकता इसलिए तुम्हारी कोई भेड़ जीवित नहीं रहेगी। अब वह रोने लगा कि महाराज ! कोई उपाय है ? कहा कि उपाय तो एक ही है कि जैसे तूने खुदा से दोस्ती कर ली ऐसे ही इन भेड़ों को खुदा की दोस्ती में तू दान दे दे, फिर ये भेड़ें खुदा की हो जाएंगी? कहा कि जब भेड़ें खुदा की हो जाएंगी फिर खुदा को कोई तकलीफ नहीं है। जब तक ये भेड़ें तुम्हारी हैं और खुदा तुम्हारा दोस्त है तब तक वह भेड़ों को नहीं रहने देगा। जब तुम कहोगे मैं भी खुदा का, भेड़ें भी खुदा की तो खुदा जानेगा, तुम्हें

क्यों तकलीफ हो रही है। यह मौसेस के जीवन की घटना है।

मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि यदि आपके दिल और दिमाग में यह बात आ जाए कि जो कुछ है सब परमात्मा का है और परमात्मा के नाते आपका उसके साथ सम्बन्ध है तो कोई दुःख नहीं होगा। तुलसीदास जी का कथन है -

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
सब मानिअहिं राम के नाते॥

(रा० २/७४-७)

भगवान् राम ने स्वयं कहा है रामायण में -

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा।
सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥

(रा० ३/१६-१०)

संसार का सारा सम्बन्ध मेरे नाते है। तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका में लिखा है -

नासों सब नातो फुरै, तासों न करी पहिचानि।

(वि०प०.१९०/५)

ये सारे नाते जिससे फुरते हैं उसको तो तूनें जाना ही नहीं और नातों को लेकर बैठा हुआ रो रहा है। पुत्र किसके नाते प्रिय लगता है ? आत्मा के नाते। यदि आत्मा उसमें से निकल जाए तो कोई किसी को प्यार करने वाला नहीं। आत्मा के रहते सभी प्यार करते हैं -

आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।

(बृहदा० ४/६)

यह घोषणा है वेद की। जिससे सारे नाते तुम्हें प्रिय लगते हैं उस परमात्मा को भूल कर नातों को पकड़ कर हम बैठे हुए हैं। तुलसीदास जी यहाँ पर लिखते हैं भरत के शब्दों में -

बिनु हरि भगति जायँ जप जोगा॥

भगवान् की भक्ति के बिना, भगवत् प्रेम के बिना जप और योग सारा व्यर्थ है। यदि परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं किए तो तुम्हारी सारी साधना निरर्थक है इसलिए गोस्वामी तुलसीदास जी अपनी विनय पत्रिका में लिखते हैं-

बेगि, बिलंब न कीजिये लीजै उपदेस।
बीज महा मंत्र जपिये सोई,जो जपत महेस॥

(वि०प० १०८/२)

तुम्हें साधना करने की चाह है तो किसी सद्गुरु की शरण में जाओ। अपने आपको परमात्मा के साथ जोड़ने की कला सीखो और सीख करके साधना में लगो, तुम्हारा जप, तुम्हारा योग सार्थक होगा अन्यथा -

बिनु हरि भगति जायँ जप जोगा॥

तुम्हारा जप, तुम्हारा योग व्यर्थ चला जाएगा। आगे क्या कह रहे हैं -

जायँ जीब बिनु देह सुहाई।
बादि मोर सबु बिनु रघुराई॥

(रा० २/१७८-६)

भरत जी कहते हैं कि जैसे आत्मा के बिना शरीर का कोई मूल्य नहीं, प्राण निकल जाए तो शरीर का कोई मूल्य नहीं रहता उसी रूप से राम के बिना यह सब व्यर्थ है क्योंकि अयोध्या वहीं है -

जहाँ रामु तहँ अवध समानू।

(रा० २/८४-६)

जहाँ राम हैं वहीं अयोध्या है, जहाँ अयोध्या है वहाँ राम हैं ऐसी बात नहीं है -

अवध तहाँ जहँ राम निवासू।

(रा० २/७४-३)

जहाँ राम निवास करें वहीं अयोध्या है। भरत कहते हैं कि जिस अयोध्या का मुझे राजा बनाना चाहते हो यह तो प्राणहीन शरीर है। प्राणहीन शरीर का कोई स्वामी बनना चाहता है ? नहीं, इसलिए कहते हैं कि बिना राम के मेरे लिए सब व्यर्थ है।

अब लोग सोचते हैं कि यह सब व्यर्थ बता कर भरत करना क्या चाहते हैं ? उन्होंने कहा कि मेरे तो हित की बात रही नहीं अब रही तुम लोगों के हित की बात-

कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गतलाज ।

(रा० २/१७८)

कहा कि मैं कैकेई का पुत्र हूँ, क्या तुम लोग यह नहीं जानते ?

फरइ कि कोदव बालि सुसाली ।
मुकता प्रसव कि संबुक काली ॥

(रा० २/२६१-४)

भरत जी कहते हैं कि याद रखो साली (कोदव) के पौधे में उत्तम चावल नहीं लगता और तलिया की सीपी में मोती नहीं पैदा होते, मोती तो समुद्र की सीपी में पैदा होते हैं। इसी रूप से कैकेई के गर्भ से कोई महात्मा नहीं पैदा हो सकता। मैं कैकेई का पुत्र हूँ। कैकेई जैसी माँ से कैसा पुत्र पैदा हो सकता है तुम लोग समझ लो। इसलिए -

कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गतलाज ।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम के राज ॥

(रा० २/१७८)

मेरी तो यही गति है। मैं कैकेई का पुत्र हूँ, कुटिल मति का हूँ, राम का विमुखी हूँ, मेरे नाते ही राम वन को चले गए हैं इसलिए मेरे को शर्म नहीं है। मैं तो निर्लज्ज आदमी हूँ और मेरे जैसे अधम व्यक्ति के राज्य में तुम सुख चाहते हो? यह असम्भव है -

कहहुँ साँच सब सुनि पतिआहू ।
चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि रानु हठि देइहहु जबहीं ।
रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥

(रा० २/१७९-१,२).

मैं सत्य कहता हूँ कि राजा को धर्मात्मा होना चाहिए। यदि आप हठपूर्वक मुझे राज्य देते हो तो पृथ्वी रसातल को चली जाएगी। भरत का यह कथन तो सत्य है लेकिन ऊपर वाली बातें सही नहीं हैं। इसलिए सही नहीं हैं कि भरत का जीवन तो महान् है, आदर्श है लेकिन यदि हठ पूर्वक उन्हें राजगद्दी पर बिठा दिया जाता तो सही में इस राष्ट्र का गौरव सदा के लिए नष्ट हो जाता। एक गलत आदर्श समाज में प्रतिष्ठित हो जाता और लोग इसी प्रकार धोखे से दूसरे के अधिकार का अपहरण करके उसका उपभोग करने में रत हो जाते।

प्रजा के प्रति राजा का बड़ा दायित्व होता है। भरत अपने इस दायित्व को समझते थे इसलिए उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। अब लोगों ने कहा कि भाई! अब तुम क्या करोगे ? भरत ने सबके सामने हाथ जोड़ कर कहा-

आपनी दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥

(रा० २/ १८२)

मैं अपनी घोर दीनता को आपके सामने सिर झुका कर कहता हूँ कि जब तक मैं श्रीराम सीता के चरण-कमल नहीं देख लूंगा तब तक मेरे हृदय का संताप दूर नहीं होगा। इसलिए आप मुझे एक ही आज्ञा दे दें -

एकहिं आँक इहइ मन माहीं।
प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥

मेरे हृदय में केवल एक चाह है कि मैं प्रातःकाल यहाँ से प्रस्थान करूँगा और जहाँ पर प्रभु श्रीराम विराजमान हैं, वहाँ जाऊँगा। आप लोग मेरे हृदय की व्यथा को नहीं जान सकते। मेरे हृदय की व्यथा को केवल मेरे राम जानते हैं। केवल राम-सीता को छोड़कर दुनिया में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो -

परिहरि रामु सीय जग माहीं।
कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥

(रा० २/१८२-३)

यह कहे कि राम के वन गवन में मेरा मत नहीं है। मेरे हृदय की भावना को

केवल राम-सीता ही जान सकते हैं, सब नहीं जानते। यह बात सत्य है। राम के छोटे भाई लक्ष्मण तो डण्डा लेकर खड़े हो गए और भरत को मारने के लिए धनुषवाण उठा लिया। वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि जब भरत कौशल्या के महल में जाते हैं तो सबसे पहले कौशल्या के मुंह से निकलता है, क्यों भरत तुम्हारे मन की बात पूरी हो गई न ? आप ज़रा सोचिए उस भरत पर क्या बीती होगी ! रामायण में तुलसीदास जी ने ऐसी बात नहीं लिखी क्योंकि राम की माँ के मुख से ऐसी बात कहलवाना तुलसीदास जी को इष्ट नहीं है। राम की माँ को तो उन्होंने महान् आदर्श बनाया। रामचरित मानस की माँ कौशल्या से वाल्मीकि की माँ कौशल्या में बहुत ही अन्तर है क्योंकि तुलसीदास जी ने समाज में एक ऐसे आदर्श की स्थापना की है जो अद्भुत और अद्वितीय है। महात्मा भरत ने यह निश्चय किया है कि मैं राम की शरण में जाऊँगा और राम जो मुझे आज्ञा देंगे वहीं मैं करूँगा। यदि पहले भरत राज्य स्वीकार कर लेते तो राज्य भरत का होता लेकिन जब राम के चरणों में जाकर वहाँ से राम के निर्देशानुसार राम की चरणपादुका को सर पर रख कर आते हैं और उन चरण पादुकाओं को राज सिंहासन पर बैठा देते हैं तो -

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति ॥

(रा० २/३२५)

राज्य का सम्भाल तो भरत ही करते हैं लेकिन अपना राज्य समझ कर नहीं राम का राज्य समझ करके। जब भरत जाने लगे वन को तो वहाँ पर उन्होंने विचार किया -

संपति सब रघुपति कै आही।
जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई।
पाप. सिरोमनि साइँ दोहाई ॥

(रा० २/१८६-३,४)

कहा कि यह सारी सम्पत्ति अयोध्या के राम की है। यदि मैं इसे बिना व्यवस्था किए ऐसे छोड़ कर चला जाता हूँ तो यह स्वामी का बहुत बड़ा अपराध होगा इसलिए अयोध्या की रक्षा की व्यवस्था करके तब भरत जी चित्रकूट जाते हैं। ऐसे ही यदि आप अपनी सारी सम्पत्ति को राम की जानें और राम के नाते उसकी व्यवस्था करते रहें - भगवान् ने दी है इसकी व्यवस्था करनी है, भगवान् ने बच्चे दिए हैं इनकी व्यवस्था करनी है, भगवान् ने घर दिया है, इसकी व्यवस्था करनी है। यह सब कुछ भगवान् का दिया हुआ है भगवान् के नाते उसकी व्यवस्था करनी है। यदि भगवान् के नाते उसकी व्यवस्था करेंगे फिर तो कर्मयोगी बन जाएंगे जिसकी व्याख्या भगवान् ने गीता के तीसरे अध्याय में की है। मैं हमेशा कहा करता हूँ कि गीता में जो भगवान् कृष्ण ने कहा है राम चरित मानस में वह करके दिखाया गया है। गीता का वह महान् कर्मयोगी कौन है ? महात्मा भरत। कर्म विज्ञान गीता का एक अद्भुत अनुपम निर्देष है, संदेश है। ऐसा दुनिया में कोई ग्रंथ मुझे अभी तक नहीं मिला। गीता किसी पुरानी बात को दुहराती नहीं है। गीता का अपना वैशिष्ठय है। गीता का वैशिष्ठय किसमें है ? कर्म विज्ञान में। भरत का जीवन कर्म विज्ञान का जीवन है। सब कुछ करते हैं लेकिन अपने लिए नहीं। तुलसीदास जी क्या लिखते हैं ?

अवध रानु सुर रानु सिहाई।
दसरथ धनु सुनि धनषु लजाई॥
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चंपक बागा॥

(रा० २/३२४-६,७)

अयोध्या के राज्य को देवराज भी सिहाते हैं। दशरथ की सम्पत्ति को सुन कर कुबेर भी लज्जित होता है। उस साम्राज्य में भरत ऐसे रहते हैं जैसे भंवरा चम्पा के बाग में रहता है। भंवरा चम्पा के फूल का रस नहीं चूसता ऐसे ही भरत सारी अयोध्या की सम्भाल करते हैं लेकिन उसका उपभोग नहीं करते। कहने का अभिप्राय आप कर्म विज्ञान की दृष्टि से धर्मात्मा बन सकते हैं और कर्मयोगी

बन सकते हैं यदि उसका अनुष्ठान करें तो ! नहीं तो कामात्मा बनेंगे और कर्म भोगी बनेंगे। यदि आप गीता, उपनिषद्, रामायण आदि के दिव्य प्रकाश में जीवन यापन करेंगे तो कर्मयोगी बनेंगे और यदि संसार में निरत होकर के सुख और स्वार्थ का जीवन बिताएंगे तो कर्मभोगी बनेंगे। कर्मभोगी का परिणाम दु:ख और संताप है और कर्मयोगी का परिणाम अक्षय-आनन्द है। उन दोनों में से जो आपको पसन्द आवे उसको आप वरण कर लेना। महात्मा भरत के चरित्र से सात दिनों तक मैंने बहुत सी बातें आपको समझाई हैं, इसको समझते हुए चिन्तन करते हुए अब घर को जाएँ उतने दिन तक प्रतीक्षा और कर लें जब तक मैं पुन: लौट कर यहां आऊं। फिर बैठेंगे, मिलेंगे और सत्संग करेंगे।

इत्यलम्

हरि ॐ तत्सत्

यदि प्रेम प्रभु से चाहता, अभिमान को तज तात रे।
दे छोड़ सब अरमान नित, हरि नाम जप दिन रात रे।
संसार के वैभव सभी, तूं जान जलती आग रे।
दे त्याग रे सुख स्वप्न का, बीती निशा अब जाग रे।
नाते सभी तन से किए, मां-बाप पुत्र कलत्र ये।
साथी सहोदर अपन पो, भूला फिरे लखी अत्र ये।
है व्यर्थ ही ममता किया, ना अंत को संग लाग रे।
तूं देख आँखें खोल के, बीती निशा अब जाग रे।

सम्पर्क सूत्र

ब्रह्मर्षि आश्रम
विराट् नगर, पिंजौर (हरियाणा)
पिन-१३४१०२,
फोन: ०१७३३-६६१७०, ६६२७०, ६६२०५

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
२८-बी, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२
फोन: ०११-२८२१६६०, २८२१९४३

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
माधोपुरी, गऊशाला रोड, लुधियाना
फोन : ०१६१-७००१४१

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
(अंग्रेजी मीडियम)
बेअन्तपुरा, चण्डीगढ़ रोड, लुधियाना
फोन : ०१६१-६६६४०६, ६०८४०६

Metaphysical Science Research Institute
Sec.19-A, Chandigarh
Phone : 0172/775390, 540128

ब्रह्मर्षि बावरा शान्ति विद्यापीठ
दीनानगर, धार रोड, उधमपुर (जे०के०)
फोन : ०१९९२-७१०८०

Brahmrishi Mission School
Jaran, Devyani, Piplaage
Bhunter, Kullu (H.P.)
Ph. 01902-65518, 66043

Brahmrishi Mission School
Hanumangarh Road,
Opp. New Water Works,
ABOHAR-152116
Ph. : 01634-29615, 30615

ब्रह्मर्षि प्राकृतिक चिकित्सालय योग आश्रम
पुरी फार्म्स, जोड़ियां, रादौर रोड,
यमुनानगर-१३५००१ (हरियाणा)
फोन : ०१७३२-७९८४६

ब्रह्मर्षि बावरा विद्या मन्दिर
चकक्रिशुनदास, ज्ञानपुर, भदोही,
वाराणसी (उ०प्र०)

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
न्यू बाईपास, ऋषिकेश रोड,
भूपतवाला, हरिद्वार (उ०प्र०)
फोन : ०१३३-४६१०१८

श्री गीता रामायण सेवा संघ
अशोक नगर, मोक्ष मार्ग,
उदयपुर (राजस्थान)
फोन : ०२९४-४१४१४०

Brahmrishi Misson
278, Heston Road, Heston
Middlesex TW5 ORT U.K.
Phone : 0208-571-3879

Brahmriahi Mission CANADA
Shri-Ram-Dham Hindu Temple
525 Bridge Street,
East Kitchener, Ontario
CANADA N2K3C5
Phone : (519) 579-1486

Brahmrishi Ashram
1246, North Mantua Street, Kent,
Ohio- 44240, U.S.A.
Phone : 330-678-3793

Brahmrishi Ashram
717, Loodsduinseweg,
2571 AM-Denhaag, Nederland.
Ph. : 070-3620961

हमारे प्रकाशन

• शक्ति तत्त्व बोध •आपकी अपनी बात

• गीता ज्ञान विज्ञान योग • श्री हनुमत विनय पच्चीसी

•श्री चण्डिकाशतक • श्री श्यामशतक

मानस में धर्मरथ • रामो विग्रहवान् धर्मः • मानस महाकाव्य में नारी

• गीता तत्व बोध • क्या वर्ण-व्यवस्था अभिशाप है? • राम नाम महिमा

•मानस के मोती • जीवन विज्ञान • भारत की आत्मा • योगांकुर

• साधना सूत्र • गीता कर्म विज्ञान • समाधान • तत्त्व चिन्तन • सन्त सन्देश

• भक्ति दर्शन (नारद भक्ति सूत्र) • राम और रामायण • क्रियायोग

• मानव पतन में हेतु • योग पथ • विश्व को हिन्दुओं का योगदान

• मानस में वैदिक सिद्धान्त • सन्त लक्षण • श्री हनुमत हृदय

•संस्कृत भाषा का महत्व • ब्रह्म और उसकी विशिष्टाभिव्यक्ति

• सहज समाधि भली •श्रीमद्भागवद्गीता

धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय १ एवं २) • ब्रह्मविद्या विज्ञान–प्रथम

• ब्रह्मविद्या विज्ञान—द्वितीय • नारी! तुलसी की दृष्टि में • शिव तत्त्व बोध

• विश्व की समस्याओं का हल—अध्यात्मवाद • हिन्दू धर्म सूत्र

• गीतोक्त बुद्धियोग • चंडी दी वार (भगवती की स्तुति) • काव्य सुधा

• श्री शिव शतक • मानस में नवधा भक्ति • महात्मा भरत

Science of Stable Wisdom • The Science of *Pranav (om)*
(Commentary on Mandookyopanishad) • How to be a Yogi
• Towards Divinity •Yoga for life • The Hindu & its way of life
• Essence of the Gita • Basic Principles of Yoga • Essays on the
Kram Yoga • Lord Hanuman-Our Ideal • Meditation Technique
• Science of the Absolute Knowledge
(Commentary on Ishopanishad)

दिव्यालोक मासिक पत्रिका

सद्विचारों के प्रचार और प्रसार की मासिक पत्रिका

आप लोग याद रखें, पैसे से आप अपना मकान सुन्दर बना सकते हैं लेकिन पैसे से अपना जीवन सुन्दर नहीं बना सकते। पैसे से आप सुन्दर बिस्तर खरीद सकते हैं लेकिन पैसे से आप नींद नहीं खरीद सकते। पैसे से आप भोजन की अच्छी सामग्री खरीद सकते हैं लेकिन पैसे से आप भूख नहीं खरीद सकते। पैसे से आप सुन्दर स्त्री ला सकते हैं लेकिन पैसे से आप को धर्मपत्नी नहीं मिलेगी। मेरे कहने का अभिप्राय है कि पैसे से आप महत्वपूर्ण वस्तु खरीद सकते हैं लेकिन सुख नहीं खरीद सकते।

—ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम, विराट् नगर, पिंजोर (हरियाणा)